भरै डिगावै डीठ नीठ जग को तृण जानै।
सबै खुटाई भरी क्रोध तनिकहि मैं आनै॥
याके भरिवे हेत करत नर पाप अनेकन।
सबही दुख को हेत 'दास' यह पेट जु रहिमन॥ १६॥

आपु सदा बेकाम के शाखा दल फल फूल।
रोकत जाय रहीम कह औरन के फल फूल॥
औरन के फल फूल रोकि जग अनहित करहीं॥
व्यर्थहिं रोकै भूमि भार पृथिवी पर धरहीं॥
आपु करै नहिं काम और कों मारैं आँकुस।
ऐसे जन सों भूलि 'दास' करिए जिन आपुस॥ १७॥

बड़े जो छोटेन सों बँधैं कहि रहीम यह लेख।
सहसन के हय बांधिए लै कौड़ी के मेख॥
लै कौड़ी के मेख अस्व गज बांधि जु राखहिं।
मुक्तामणि अनमोल पोहि गुन नाहिं जु नाखहिं॥
बड़े बड़े सद्ग्रन्थ लिखत इक तुच्छ कलम सो।
लघु को हूं आदरैं अहैं जग लोग बड़े जो॥ १८॥

धूर उड़ावत सीस पैं कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज रिषि पतनी तरी सो ढूंढ़त गजराज॥
सो ढूंढ़त गजराज आजु व्याकुल ह्वै भारी।
ज्यों बूड़त गज देखि धाइ गहि लियो उबारी॥
त्यों ही हम पैं द्रवौ नाथ गजराज मनावत।
अंसुआं ढारत नैन भूमि सिर धूर उड़ावत॥ १९॥

जो रहीम भावी कहूं होती अपुने हाथ।
राम न जाते हिरन सँग सीता रावन साथ॥
सीता रावन साथ जाइ दुख असह न पावत।
दसरथ बचन न देत प्रान प्रिय पुत्र गँवावत॥
जदपि राम सरवज्ञ टारि नहिं सके लिखी सो।
कोटिन करो उपाय होत निश्चय भावी जो॥ २०॥

हित अनहित सब कोउ कहै की सलाम की राम।
हित रहीम जब जानिए जेहि दिन अटकै काम॥
जेहि दिन अटकै काम न तादिन मुखहिं छिपावै।
आपु सहै दुख कोटि मित्र के काम बनावै॥
बिपति देइ जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित।
सम्पद मैं तौ धाइ बनत सहजही सबै हित॥ २१॥

श्री राधाकृष्ण दास।

सम्राट अकबर

आईन-ई-अकबरी के लेखक ने कहा है कि "शासन के तीनों विभागों की सफलता और राव रङ्क सब श्रेणी की प्रजा की इच्छाओं की पूर्णता, शासक की दिन व रात्रि-परिचर्या पर निर्भर है।"

यदि अकबरशाह इस कसौटी पर कसा जाय तो क्यों वह इतना बड़ा महापुरुष हुआ, तथा शासन में क्यों उसने इतनी सफलता प्राप्त की, इन बातों का पता भली भांति लग सकता है।

इतनाही कहना बहुत न होगा कि अकबर का जीवन नियमबद्ध था, वरन् उसके विचार और प्रयत्न सदा अपने प्रयोजन की सिद्धि से सम्बन्ध रखते थे, यही मानना पड़ेगा। वह प्रयोजन क्या था? यही कि शासनरूपी ऐसा दुर्ग निर्माण कर जाऊं जिसकी नीव प्रजा के हृदय पर पड़े और शासक चाहे कैसाही क्यों न हो, पर इस दुर्ग की एक भी ईंट वा पत्थर भङ्ग वा निर्बल न होने पावे।

अकबर की मानसिक दशा को समझ लेना मानो उसकी नीति की कुञ्जी का पा लेना है। अकबर के समय में स्वतन्त्र विचार प्रगट करना कोई जानता ही नहीं था। जिन लोगों के बीच अकबर ने जन्म लिया तथा शिक्षा पाई, वे लोग प्राचीन ढर्रे पर चलनेवाले मनुष्य थे; उनके मन में न तो कभी नए विचार आते और न उन्हें अच्छे ही लगते। उन लोगों का दृढ़ विश्वास था कि अहले इस्लाम को छोड़ और सब अन्यमतावलम्बी नरक की अग्नि में भूने जांयगे। इन नरकगामियों को मार उनका सर्वस्व अपहरण कर लेना, व उनको सत्य धर्म्म का अनुयायी बनाना उनके मत में एक बड़ा पुण्यकार्य्य था। यद्यपि अहले इस्लाम की संख्या भारत में बहुत थोड़ी थी और बहुधा इन्हीं लोगों की राजभक्तिहीनता से मुसलमान नरेशों को आपत्ति में पड़ना पड़ता था, तथापि अकबर के पूर्व ऐसा कोई सुलतान नहीं हुआ जिसने अपार हिन्दु प्रजा के अनुनयन से लाभ उठाने का कभी विचार भी किया हो, उस प्रजा को लाभ पहुंचाना वा सन्तुष्ट रखना तो बातही निराली है। यदि अकबर के पूर्व कोई इस बात को जिह्वा पर भी लाता तो महा मूर्ख वा धर्मद्वेषी समझा जाता। पर यह अकबर की बुद्धि की ही विलक्षणता थी कि उसके मन में सदा के राजभक्त हिन्दुओं को सन्तुष्ट करके उन्हें अपना मित्र बनालेना और उनके धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करना, तथा उन्हींका आश्रय ले कर सदा के अभक्त मुसलमान सेनापतियों वा सामन्तों पर अपना आधिपत्य जमा लेना, ये सब बिचार उत्पन्न हुए।

चाहे इस नीति में स्वार्थपरता हो, तौभी वह अकबर के पूर्वगत सुलतानों की संकीर्ण नीति की अपेक्षा अधिकतर उदार थी, और यदि औरङ्गज़ेब भी उस उदार नीति का अवलम्बन करता तो कदाचित् मुग़लवंश ऐसी अधोगति को ऐसे शीघ्र न पहुंचता। पर बात तो यह थी कि अकबर की डग पर डग मारनेवाले दारा को परास्त करने के हेतु औरङ्गज़ेब को प्रतिकूल नीति स्वीकार करनी पड़ी। यदि वह दारा को काफ़िर कह कट्टर मुसलमान न बनता तो भला ये लोग उसका इतना पक्ष कब करते। हां, इनके पक्ष से औरङ्गज़ेब को अपने वंश का नाशक तो बनना पड़ा, पर आमरण देहलीसाम्राज्य का शासक बन जाना क्या उसके लिये कम बात थी। स्वार्थी लोग इसके सिवाय और क्या चाहते हैं? हिन्दू-प्रिय दारा को अलग करके देहली का सम्राट बन जाना ही तो औरङ्गज़ेब का मुख्य उद्देश्य था। सो अपनी क्षुद्र नीति के द्वारा उस उद्देश्य को पूर्ण करके वह अकबर के स्थापित साम्राज्य को सदा के लिये दुर्बल कर गया।

हम ऊपर कह आए हैं कि अकबर ने उन लोगों के बीच में शिक्षा पाई थी जिन लोगों में दुराग्रह

समाया हुआ था। ऐसे कट्टर लोगों में रह कर भी जब अकबर के ऐसे स्वतन्त्र वा उदार बिचार हो गए तो उसे हम विलक्षण पुरुष न कहें तो क्या कहें। वह छुटपन में भी विचारशील था। बैराम खां की आधीनता में रह कर भी उसे हिन्दू राजाओं के सद्गुणों को देखने के अनेक अवसर मिले थे। वह देखता था कि मेरी प्रजा अधिकांश हिन्दू ही है। यद्यपि हिन्दुओं को मुसलमान होने में सिवाय लाभ के हानि कुछ नहीं है, तैाभी ये क्यों अपना सर्वस्व त्याग हिन्दू ही बने रहने के लिये ऐसी चेष्टा करते हैं ? इसमें कोई विशेष भेद अवश्य है। फिर वह मुसलमान अमीरों वा राजपूत सरदारों के आचरणों की तुलना करता तो हिन्दू राजपूतों ही में भक्ति अधिक देखता था। इन्हीं लोगों में उसे सत्यरति विश्वासपात्रता आदि कई सद्गुण मिलते थे। ऐसी ऐसी बातों पर विचार करने से वह यही स्थिर करता कि इस्लाम सब लोगों के लिये आवश्यक नहीं है। उसे प्रत्यक्ष देखने में आता कि मुसलमान अमीर तो दगा देते, पर राजपूतों के कार्य्य राजभक्तियुक्त होते हैं। शनैः शनैः अकबर के ये विचार दृढ़ हो गए। वह यही कहने लगा कि जब मैंने ही सत्यमार्ग नहीं पाया तो दूसरों को उसपर चलाने की चेष्टा कैसे कर सकता हूं। अब उसने सत्यमार्ग खोजने का प्रयत्न आरम्भ किया। भाग्यवश उसे फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल ये दो विद्वान् वा उदारचित्त मुसलमान मित्र मिल गए। इन दोनों ने अकबर के विचार बिलकुल परिवर्तित कर दिए। प्रति दिन इस्लाम पक्ष के लोगों की संकीर्णता उसे साक्षात् दीखने लगी और उससे घृणा होने लगी। धीरे धीरे सबही मतवालों को उसने ऐसाही पाया। सब मतों के सिद्धान्तों का मथन कर उसने यही स्थिर किया कि गुणदोष सबही में एकसे पाए जाते हैं। फिर किसी विशेष मत का सत्कार कर शेष मतों का तिरस्कार करना सुबुद्धि का काम नहीं है। ऐसे उदार विचार पहिले पहल अकबर के ही मन में अंकुरित हुए। देश काल का स्मरण करने से यह कुछ कम विचित्र बात न थी।

यह नहीं समझना चाहिए कि अकबर के मन में ये सिद्धान्त एकदम उत्पन्न हो गए होंगे। सब सच्चे और स्थायी ज्ञान के समान इनकी भी शनैः शनैः वृद्धि होती गई। एक मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि ब्राह्मणों वा सुमानियों की संगति से अकबर पुनर्जन्म में विश्वास करने लगा था। हां, सङ्गति का प्रभाव तो अवश्य पड़ता ही है; पर ऐसी सङ्गति में जो अकबर की रुचि हुई, इसका कारण केवल अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी का सम्पर्क है। एक तो वह स्वतः विचारशील पुरुष था, दूसरे ऐसे दो उदाराशय विद्वानों के साथ मैत्री हो जाने से उसके विचार और भी दृढ़ हो चले और अन्त में वह बिलकुल द्वेषशून्य हो गया।

अबुलफ़ज़ल

अबुलफ़ज़ल कैसा पुरुष था वह उसके लेख ही से स्पष्ट विदित होता है। "मेरे मन को शान्ति नहीं थी, मेरा चित्त कभी तो मंगोलिया के साधुओं और कभी लिबानन के यतियों के सिद्धान्तों की ओर आकर्षित होता था। तिब्बत के लामाओं और पोर्तगाल के फरङ्गी पाद्रियों से वार्तालाप करने की मुझे बड़ी उत्कंठा रहा करती थी। पारसी पण्डितों के साथ बैठकर उनके सिद्धान्तों पर विचार करने में मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। अपने देश के मैालवियों से मुझे बड़ा तिरस्कार हो गया था"।

भला ऐसा विद्वान वा उदारचित्त मित्र पाकर अकबर सरीखे विलक्षण बुद्धिवाले सज्जन पर सत्सङ्गति क्यों न असर करे ! युद्ध, आखेट, शासनकार्य्य—सभी में अबुलफ़ज़ल अकबर के साथ रहता था, तनिक भी अवकाश मिलने पर वह सदा उससे धर्म्म विषय पर वार्तालाप करता था।

पहले २० वर्ष तक ते। अकबर के। युद्ध करने तथा मुग़ल साम्राज्य दृढ़ करने में अहर्निशि लगा रहना पड़ा। बङ्गाल, गुज़रात, मालवा आदि प्रान्तों में पठान लोग सदा उपद्रव किया करते थे। यदि अकबर तनिक भी इन शत्रुओं की उपेक्षा करता तो उसे अपने पिता हुमायूं के समान देश विदेश मारा मारा फिरना पड़ता। सो जब तक उसने उन्हें नीति के कथनानुसार विध्वंस न कर डाला, तब तक उसे तनिक भी विश्राम न मिला। इन शत्रुओं से लड़ने के सिवाय उसे और और लोगों से भी युद्ध करना पड़ा। नीति में जो कहा है कि सन्तोषी नृपति और असन्तोषी ब्राह्मण अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं, सो बहुत ही सत्य है। शत्रुओं से परिवृत राजा यदि उनके। न दबा ले तो वे उसे अवश्य ही दबा बैठेंगे, और ऐसे अवसर में मित्र भी शत्रु बन जायंगे। इसके अतिरिक्त एक ही देश में अनेक स्वतंत्र शासक होने से वहां शान्ति डेरा नहीं डाल सकती। अकबर की नीति का यह एक अटल सिद्धान्त था कि सारा भारतवर्ष एक ही छत्र के नीचे आए बिना यहां शान्तिस्थापन कदापि नहीं हो सकती और बिना शान्ति के प्रजा के। सुख होना असंभव है।

दूसरे उसे अनुभव से तथा मुसलमानों के इतिहास से यह बात भी स्पष्ट विदित हो गई कि भिन्न धर्म्म वा भिन्न देश के शासक यदि चाहें कि हम बलात् अपना अधिकार स्थापित रख सकें, सो भी उनकी बड़ी भूल है। चाहे उन शासकों के पास कैसी ही वीर वा विशाल सेना क्यों न हो, और चाहे वे कैसेही पराक्रमी वा साहसी क्यों न हों, पर जब तक शास्य और शासक के मध्य प्रीति का संचार न होगा तब तक उनका अधिकार भी दृढ़ नहीं हो सकेगा।

तीसरे, अकबर ने यह भी देखा कि हिन्दुओं के। जितनी प्रीति अपने धर्म्म से है, उतनी अपने प्राण वा धन से नहीं है। इस मुग़ल बादशाह के पूर्व जितने सुलतान हो गए थे, वे सब हिन्दुओं से द्वेषभाव रखते थे। अतएव उनकी हिन्दू प्रजा ने कभी उनका मङ्गल नहीं चाहा। उन्हें केवल अपने सधर्म्मी मुसलमानों का ही भरोसा रखना पड़ता था। इन मुसलमानों में हर प्रकार के लोग विद्यमान थे। तुर्क, मुग़ल, पठान, अरब आदि सब क़ौमों के मुसलमान केवल अपनी उन्नति के विचार से आए थे, और सबल सुलतान से तो दबते थे, पर निर्बल के। दबाकर वे लोग स्वतः अधिकारी बन जाया करते थे। अकबर ने भी सिंहासनारूढ़ होते ही अपने सेनापतियों की अभक्ति का परिचय पाया। यह देख उसने हिन्दुओं से मैत्री पैदा करने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। उन दिनों में राजपूत जाति बहुत ही सबल और प्रभावशालिनी थी। उस जाति के नेताओं के। अपने बस में करके उसने मुसलमानों के। दबाना चाहा। मैत्री का बन्धन विवाहादि सम्बन्ध से बहुत दृढ़ हो जाता है। यह तो स्वाभाविक नियम है; इसीलिये अकबर ने राजपूतों की कन्याओं के। अपने वंश में लेना उचित समझा।

अपना अधिकार दृढ़ करने के। अकबर ने अपने विचारों के। कार्य्यरूप में लाना चाहा और अपने दोनों मित्रों की सहायता वा उनके परामर्श से उसने अपनी शासनप्रणाली परिवर्तित कर डाली। बिचारे कट्टर मौलवी दाँतों में उंगली दबा दबाकर रह गए, गालों पर हाथ फेर फेर कर तोबा तोबा करने लगे। यदि उनकी चलती तो वे अकबर के। पदच्युत किए बिना न रहते, पर वीर राजपूतों की तलवार देख कर उनके देव भाग जाते। अबुलफ़ज़ल भी बड़ा धूर्त था। धर्म्म-विवाद में वह कोई ऐसी बात निकाल बैठता जिससे मुल्लाओं के। अकबर के विषय में अनादर-सूचक वचन कहने पड़ें और अकबर की घृणा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय।

इबादतख़ाना

बृहस्पतिवार को सायंकाल उलमा अर्थात् मुसलमान विद्वानों की सभा इबादतख़ाने में हुआ करती थी। इसमें सदा धर्म्म विषय में विवाद हुआ करता था। अकबर और अबुलफ़ज़ल के उदार वा गंभीर विचारों को सुनकर संकीर्ण हृदय उलमा के सभ्यों को बहुत बुरा लगता और वे क्रोध में आकर कुछ का कुछ कह बैठते थे। शीआ और सुन्नी आपस में भी गाली दे बैठते जिससे अकबर को उनकी संकीर्णता देख बहुत घृणा हो आती और वह उन्हें सावधान करता और बहुधा उसे सभा से निकलवा देने तक की धमकी देनी पड़ती थी।

एक दिन अबुलफ़ज़ल ने एक ऐसा विषय उपस्थित किया जिससे अकबर का मत उलमा से सदा के लिये विरक्त हो गया। उसने यह प्रश्न उठाया कि जिस प्रकार सांसारिक बातों में अकबर का निर्णय प्रामाणिक समझा जाता है, वैसाही धार्म्मिक विषयों में भी मानना अवश्य है। ऐसा प्रश्न उठाना माना इस्लाम की जड़ पर कुठाराघात करना है, क्योंकि कुरानशरीफ़ के अतिरिक्त और दूसरा क्या प्रमाण हो सकता है! मुल्लाओं के इस उत्तर पर अबुलफ़ज़ल ने कहा कि यद्यपि कुरानशरीफ़ ही पर इस्लाम स्थापित है, तथापि तुम्हीं लोग तो एक एक आयत के अर्थ निकालने में अलग अलग सम्मति देते हो जो परस्पर विरुद्ध होने से सबही सत्य नहीं हो सकतीं। इस दशा में एक निर्णय देनेवाले की बहुत बड़ी आवश्यकता है, सो बादशाह के अतिरिक्त और दूसरा कौन इस बात को कर सकता है! विचारे मौलवी निरुत्तर हो गए, पर उनके हृदय में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसी दिन से उन लोगों ने अबुलफ़ज़ल को अपना पूर्ण शत्रु समझ लिया और उसके नाश कर देने का सङ्कल्प कर बैठे। ऊपर से तो अकबर का विरोध कर ही नहीं सकते थे, इसलिये उन लोगों को उसे मुजतहिद का पद देना ही पड़ा और एक सनद लिख कर उसपर हस्ताक्षर कर दिए। यह सनद प्रोफ़ेसर ब्लैाकमैन की अंग्रेज़ी आईन-इ-अकबरी के १८६ पृष्ठ में दी हुई है। अबुल-फ़ज़ल ने अकबरनामे में इस विषय पर यों लिखा है–"इस पत्र से बड़ा ही लाभ हुआ। (१) शाही दरबार में प्रत्येक जाति और प्रत्येक मत के लोग उपस्थित होने लगे और प्रत्येक मत के उत्तम उत्तम सिद्धान्त स्वीकार किए गए। (२) एक ही भाव से सब मत देखे जाने लगे, जिससे सबको धर्म्मसम्बन्धी स्वतंत्रता मिल गई। (३) दुष्ट कट्टर लोगों की सदा के लिये हार हो गई।" पहिले उलमा के दो मेम्बरों ने हस्ताक्षर करना अस्वीकार किया, पर पीछे से समझ बूझ कर झख मार उन दोनों ने भी सही कर दी। उलमा में अबुलफ़ज़ल का पिता भी था। उसने हस्ताक्षर के साथ ही इतना और जोड़ दिया कि संसार के सर्व धर्मों का मथन कर मैंने भी यही सिद्धान्त स्थिर किया था और ऐसी ही शुभ घटना की बहुत काल से आशा लगाए था।

अकबर के मुजतहिद नियुक्त होते ही माना धर्मस्वातंत्र्य ने इस देश में अवतार ले लिया। प्रत्येक मत के अनुयायी निडर हो राजसभा में अपने अपने सिद्धान्तों का समर्थन करने लगे; माना अकबर का दरबार शिकागो का Parliament of Religions ही बन गया। अकबर ने भी बहुत प्रसन्न होकर अपने मित्र अबुल फ़ज़ल को अनेक धन्यवाद दिए और मनमाने परिवर्तन करने का बीड़ा उठाया।

न्यायालय में संशोधन

अकबर का प्रधान न्यायाधीश कट्टर सुन्नी मुसलमान था; अतएव शिआओं वा हिन्दुओं पर बड़ा ही अत्याचार किया करता था। उसने फ़ैज़ी को भी बहुत तङ्ग किया था। अकबर ने उसे ऊपरी सत्कार के साथ मक्का भेज दिया और एक दूसरे प्रभावशाली कर्म्मचारी की भी ऐसी ही

गति हुई। सब न्यायाधीशों को आज्ञा दे दी गई कि वे सुन्नी वा शीया तथा हिन्दु, पारसी, ईसाई आदि सब मतवालों के साथ समभाव से न्याय करें। अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी निरन्तर अकबर के साथ रह कर उसको सब प्रकार के संशोधनों में पूर्ण सहायता दिया करते थे।

नया धर्म्म

अकबर ने देखा कि बहु-मत-मतान्तरों के कारण सदा झगड़ा हुआ करता है। ऐसी दशा में शान्ति रहना बहुत दुष्कर बात है। इंगलिस्तान में भी महारानी इलीज़ेबेथ का ऐसा ही विचार था। उस समय में धर्म्म और शासन के बीच सचा सम्बन्ध था। बिना एक मत हुए शासक-लाग सुशासन करना दुस्साध्य समझते थे।

अकबर ने सब भिन्न भिन्न मतों के स्थान में एक मत स्थापित करने के अभिप्राय से दीन-इलाही नामक एक नए धर्म्म को चलाया। इस धर्म्म का मूल सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका भूमि पर ख़लीफ़ा वा प्रतिनिधि है। दीन-इलाही का यह मानो कलमा वा महावाक्य था। मुसलमानी प्रार्थनाओं को सङ्कीर्ण मान उसने पारसियों की प्रार्थनाओं का प्रचार करवाया और ईश्वराराधनविधि हिन्दूशास्त्रों से सङ्कलित करवाई। मुसलमानी सन के बदले पारसी शाका चलाया गया और राजकीय पत्रों पर उसीका उपयोग होने लगा।

इन सब परिवर्त्तनों से दुराग्रही समाज के हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा, पर वे बादशाह का कर ही क्या सकते थे; अतएव अबुलफ़ज़ल के साथ ही शत्रुता मनाना चाहते थे। इन परिवर्त्तनों के सिवाय भगवानदास, मानसिंह, बीरबल आदि हिन्दुओं को बड़े बड़े पदों पर विभूषित देख उनके हृदय को ईर्षाग्नि और भी सन्तप्त करती थी। ईर्षावश उन्हें इन हिन्दू कर्म्मचारियों के गुण दृष्टिगत नहीं होते थे। उनका काफ़िर होकर बड़े बड़े पद पाना ही एक बड़ा अनर्थ था। ये लोग इन हिन्दू कर्म्मचारियों को किस तुच्छभाव से देखते थे, यह बात मुसलमान इतिहासलेखकों के ग्रन्थ पढ़ने से ही विदित होती है।

अकबर की धर्म्मजिज्ञासा

बादशाह ने ईसाई मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के अभिप्राय से गोआ के फ़रङ्गी पादरी रोडोस्को एक्वैवा को अपने दरबार में बुला कर रक्खा और फैज़ी से नए नियम का अनुवाद भी करवाया। कोई कोई यह भी कहते हैं कि इसी समय अकबर ने फ़रङ्गी कन्या मरियम से विवाह किया था। पादरी साहिब ने निमंत्रण पाकर यही समझा कि अब अकबर अवश्य ही ईसाई हो जायगा और ऐसा होने से भारतवर्ष भर में ईसाई मत अनायास ही प्रचलित हो जावेगा। पादरी साहिब की यह बड़ी भूल थी जो उन्हें पीछे से मालूम भी हो गई। अकबर ने जो ईसाईमत का आदर और उसके सिद्धान्तों की जिज्ञासा की, यह कोई विशेष बात न थी जिससे पादरी साहिब को उसके ईसाईमत ग्रहण करने की आशा हो जाय।

अबुलफ़ज़ल लिखता है कि पादरी साहिब के पहुंचने बाद एक दिन इबादतख़ाने में जो सभा हुई उसमें उलमा के मेम्बरों ने उक्त साहिब को बहुत कटुबचन कहे और ईसाई धर्म्म के विरुद्ध उन्होंने व्यर्थ आक्षेप करना आरम्भ कर दिया, पर प्रमाणों द्वारा एक भी कथन सिद्ध न कर सके। इसपर पादरी ने धर्म्मपरीक्षा करने का एक अनूठा प्रस्ताव किया। उसने कहा कि तुम लोग कुरानशरीफ़ ले लो और हम बैबिल लिये लेते हैं; चलो दोनो अग्निप्रवेश करें और जो कुशलपूर्वक बिना भस्म हुए बाहर निकल आवे उसीका मत सत्य समझा जाय। बिचारे मुल्लाओं को इतना विश्वास तो था ही नहीं कि अग्निप्रवेश कर सकें, फिर सिवाय गालियों के उनके पास और दूसरा

क्या उत्तर था ! अकबर को उनका दुराग्रह देख बहुत क्रोध हुआ और उसने उन्हें खूब उलटी पलटी बातें सुनाईं। उसने कहा कि श्रद्धा के बिना ऊपर से किसी मत का अवलम्बी बनने की बांग मारना बड़ी गर्हित बात है। तुम लोगों में सिवाय झूठे अभिमान के कुछ नहीं है। जो कुछ कहते हो उसके सिद्ध करने में नितान्त अशक्य हो। केवल कलमा जपने, खतना कराने वा राजा के भय से दण्डवत् प्रणाम करने से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता।"

इस लेख से इतना तो सिद्ध होता है कि अकबर को किसी मत का पक्षपात न था। मुसलमान विद्वानों से वह इसलिये अप्रसन्न था कि वे लोग सिवाय अपने मत के और सब मतों को असत्य समझते थे और उनपर अत्याचार भी करना चाहते थे। वास्तव में वह उन लोगों के दुराग्रह का विरोधी था, न कि इस्लाम का।

सूर्य्य पूजन

अकबर सूर्य्य की पूजा किया करता था, इस लिये लोग उसे पारसी समझने लगे थे। वास्तव में पारसी लोग अग्नि वा सूर्य्य की ही पूजा नहीं करते, किन्तु इन दो पदार्थों में ईश्वर का महत्व अधिक देख कर वे उनके द्वारा उसी परमात्मा की उपासना करते हैं। यही अकबर का सिद्धान्त था। उसे पारसियों का सीधा सादा मत बहुत अच्छा लगता था।

सती

अकबर किसीके धर्म्म पर हस्तक्षेप नहीं करता था, यह तो सत्य है; पर धर्म्म का आश्रय लेकर जो लोग दूसरों को प्राणभय में डालते थे, उनको स्वतन्त्रता नहीं देता था। हिन्दुओं में सती होने की प्रथा बहुत काल से प्रचलित थी। महाभारत में माद्री महारानी के सती होने की वार्ता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि अपने पति की आत्मा को योगबल से रोक कर योगाग्नि से शरीर को भस्म करके स्त्री पति के साथ जा सकती है। असल सती इस प्रकार होनी चाहिए। समय पाकर यह प्रथा दूषित हो गई थी। स्वार्थीलोग पात्र अपात्र सबही स्त्रियों को सती करके वंशकी कीर्ति बढ़ाना चाहते थे। बस, घर घर सती करना ही रह गया था, जिससे बिचारी अबलाओं को बड़ा कष्ट सहन कर प्राण देने पड़ते थे। इस अत्याचार का नाम धर्म्म नहीं है, पर तौभी अकबर ने इस प्रथा को बिलकुल उठा देने की आज्ञा नहीं दी। उसने केवल यह आज्ञा प्रचलित की कि जो स्त्री तनिक भी सती होने में असमञ्जस करे उसे बलात् सती करनेवाला दण्ड पावेगा।

जयमल अम्बर के बिहारीमल का भतीजा था। यह वही राजा बिहारीमल है जिसने सब राजपूतों से पहिले अकबर के साथ सम्बन्ध किया था। अतएव उसके वंश के लोग बादशाह को बहुत प्रिय थे। राजा जयमल का विवाह जोधपुर की राजकुमारी से हुआ था। एकबार बादशाह ने राजा जयमल को अपना प्रतिनिधि बनाकर बङ्गाल प्रान्त के अमीरों के पास किसी विशेष कार्य्य सम्पादन के लिये भेजा था। चौसा पहुंचकर जयमल की मृत्यु हो गई। अकबर अजमेर में था। उसे समाचार मिला कि जयमल की विधवा सती होना अस्वीकार करती है, पर उसके भाई बन्धु तथा ससुरालवाले उसे बलात् सती करने की चेष्टा कर रहे हैं। अकबर ने तुरन्त बिहारीमल को कई राजपूतों के साथ ऊटों पर सवार करके उस अबला की सहायता के लिये भेजा। ये लोग ऐन वक्त पर पहुंचे; देखा कि उदयसिंह बलात् विधवा माता को चिता पर बैठाना चाहता है। बिहारीमल ने उसे पकड़ कर सब दर्शकों को मार भगाया और उस दीन विधवा को प्राण दान दिया।

हमने इस लेख में अकबर की धर्म्मसम्बन्धी नीति वा विचारों का कुछ वर्णन किया है। दूसरे लेख में उसकी राजनीति का वर्णन करेंगे।

रघुबरप्रसाद द्विवेदी।

आकाशमंडल

खड़ा हुआ मैं, निकल के घर से, गगन में तारे, चमक रहे थे।
सभी अनोखे, सभी मनोहर, सभी प्रभा से, दमक रहे थे।
अपूर्व गहने, रजत के पहने, अपार छवि से, छमक रहे थे।
मनो प्रतीक्षा, करें किसी की, इसी से मग में ठमक रहे थे॥

फिरीँ जो आँखें इधर अचानक, मयंक बानक बना के आया।
रहे जो पहले बने रुपहले, उन्हें सुनहली छटा दिखाया।
विचारने वे लगे चकित हो, बदन में शोभा कहाँ से लाया।
कहाँ की ऐसी अनूप झाँकी, स्वरूप अपना कहाँ बनाया?

किया है हम को बड़ा ही लज्जित, दिखा सुसज्जित शरीर प्यारे।
घमंड हम को बड़ा था मन में, इसी से सब से खड़े थे न्यारे।
परन्तु देखा इसे है जब से, सुरङ्ग धारे तिलक सँवारे।
तभी से तन में बड़ी जलन है, कहीं कलन है कसक के मारे॥

"सदैव पति हैं यही हमारे" कहा क्षमा ने "न वैर करिये।
प्रभाव इनका प्रगट न तुम पर, चलो इन्हीं के चरन को धरिये।
स्वभाव इनका बड़ा ही शीतल, कहे से मेरे नहीं मुकरिये।
इन्हें सुधाकर, कहते हैं सब, वृथा न प्यारे हृदय में जरिये॥

सुराज्य* इनका अतीव विस्तृत, पहाड़ खाड़ी जहाँ भरत हैं।
सदैव शास्त्रानुसार जिसके, पितर निवासी रहे बहुत हैं।
गमन करें हैं सदा गगन में, विमान इनके तुरङ्ग युत हैं।
द्विजेश इनको मनुष्य कहते, प्रधान अत्री ऋषीश सुत हैं"॥

कहा ग्रहों ने य बात सुन कर "किया है तुमने विचार उत्तम।
जदपि बहुत है पसार अपना, असार तो भी बिना पराक्रम।
धरा, हमारे समान तुम हो, बड़े हैं विधु से कई गुना हम।
स्वयं प्रकाशित नहीं कदाचित्, इसी से अपना प्रताप है कम"॥

"कहो न ऐसे वचन कभी तुम, बिना हमारा प्रभेद जाने"।
उपग्रहों ने कहा कड़क कर लिये अहंता स्वतन्त्रि ताने।
"मयंक भी है हमारे ऐसा किया है भ्रम यह समीपता ने।
दिया प्रतिष्ठा इसी से भू ने, इसीमें उसने विनोद माने॥

दिवस* अठाइस लगाके लग भग, प्रदक्षिणा वह उसी की करता।
इसी से उससे प्रसन्न है वह, लगा लिया है वचत का परता।
स्वलाभकारी विचार करके, प्रदान कर दी उसे अमरता।
स्वयं प्रकाशित नहीं है वह भी, इसीसे यह है अधिक अखरता"॥

"वचन हमारा प्रमाण मानो" कहा धरा ने तुरन्त सब से।
"समानता की तुम्हें शशी से, हवा लगी है बताओ कब से?
महत्व इनका हमें विदित है, रचा है विधि ने प्रपञ्च जब से।
पता तुम्हारा अभी लगा है, विचार कर लो तनिक भी अब से॥

जदपि उचित है कथन तुम्हारा, पड़ा है उन पर प्रकाश रवि से।
तथापि उनकी प्रदीप्ति सुन्दर, सदा प्रशंसित रही सुकवि से।
उन्हीं से औषधि हुई हैं रुज में, नहीं हैं जो कम कदापि पवि से।
कहाँ हैं जग में सजीव ऐसे, न मोह जावें सुधांशु छवि से!

नहीं हैं मुझ में मनुष्य वे जो न कौमुदी से प्रमोद पाते।
कहाँ न कैरव हुए प्रफुल्लित कहाँ न तस्कर रहे लुकाते?
इसीसे उसकी हुई प्रशंसा इसीसे मानव सुकीर्ति गाते"
अनेक तारे य सुनके प्रमुदित हुए हैं सहमत रहे जो आते॥

"सदैव इससे हुए उपकृत मनुष्य उससे प्रसन्न हैं अति।
यही है कारण महत्व का भी बखानने वे लगे रसा प्रति।
"परोपकारी सदा सुखी है उसीका यश है उसीकी उन्नति।
इसीसे सब विधि सुयोग्य है शशि चलो हमारा बनेगा यह पति"॥

हुई यथोचित सभी की सम्मति चले वहाँ पर बने ठने से।
चतुर्दिशा में पहुँच के घेरा रहे ठसक वे वहाँ घने से।
अधीश अपना उसे बनाया लगे चमकने उसी कने से।
तभी से मङ्गल हुआ गगन में बितान नीले रहे तने से॥

बागीश्वर मिश्र।

* कहते हैं कि चन्द्रलोक का व्यास २१६० मील है और उस पर सृष्टि का होना भी निश्चित है।

* पृथ्वी की एक परिक्रमा में चन्द्र को २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११½ सेकण्ड लगते हैं। यह भी एक उपग्रह है।

गुलिस्तां आठवां बाब

का हिन्दी अनुवाद

उपदेश कुसुम

भाषा गद्य और पद्य में, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत। मूल्य दो आना। डाक महसूल आध आना।

मुअल्लिम नागरी

बाबू नन्दमल कृत

हिन्दी न जाननेवाले सब लोगों को अवश्य मंगवानी चाहिए। इसकी सहायता से अमले, वकील, हाकिम, दरख्वास्तनवीस, मुहर्रिर, आदि सब अदालती लोग बहुत शीघ्र हिन्दी का लिखना और पढ़ना सुगमता से सीख जांयगे। मूल्य ।।) डाक महसूल –)

नूतनचरित्र

बाबू रत्नचन्द, बी. ए., वकील, हाईकोर्ट, इलाहाबाद रचित, एक सुन्दर उपन्यास है। सब साहित्यसेवियों को नूतनचरित्र पाठ करना चाहिए। यह पुस्तक हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों में माना जाता है। मूल्य १) डा. म. –)॥

दुर्गा सप्तशती

कीलक कवचादि सब बातों से सम्पूर्ण। सुन्दर मोटे अक्षरों में बहुत शुद्ध छपी है। मूल्य ॥=) डाक महसूल –)

इन पुस्तकों के मिलने का पता–इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

THE CENTURY PRIMER

By

RAMANANDA CHATTERJEE, M. A.

PROFUSELY ILLUSTRATED AND WRITTEN ON NEW LINES TO SUIT THE REQUIREMENTS OF INDIAN STUDENTS.

· Price 4 as. Postage 0-0-6.

To be had of—THE INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

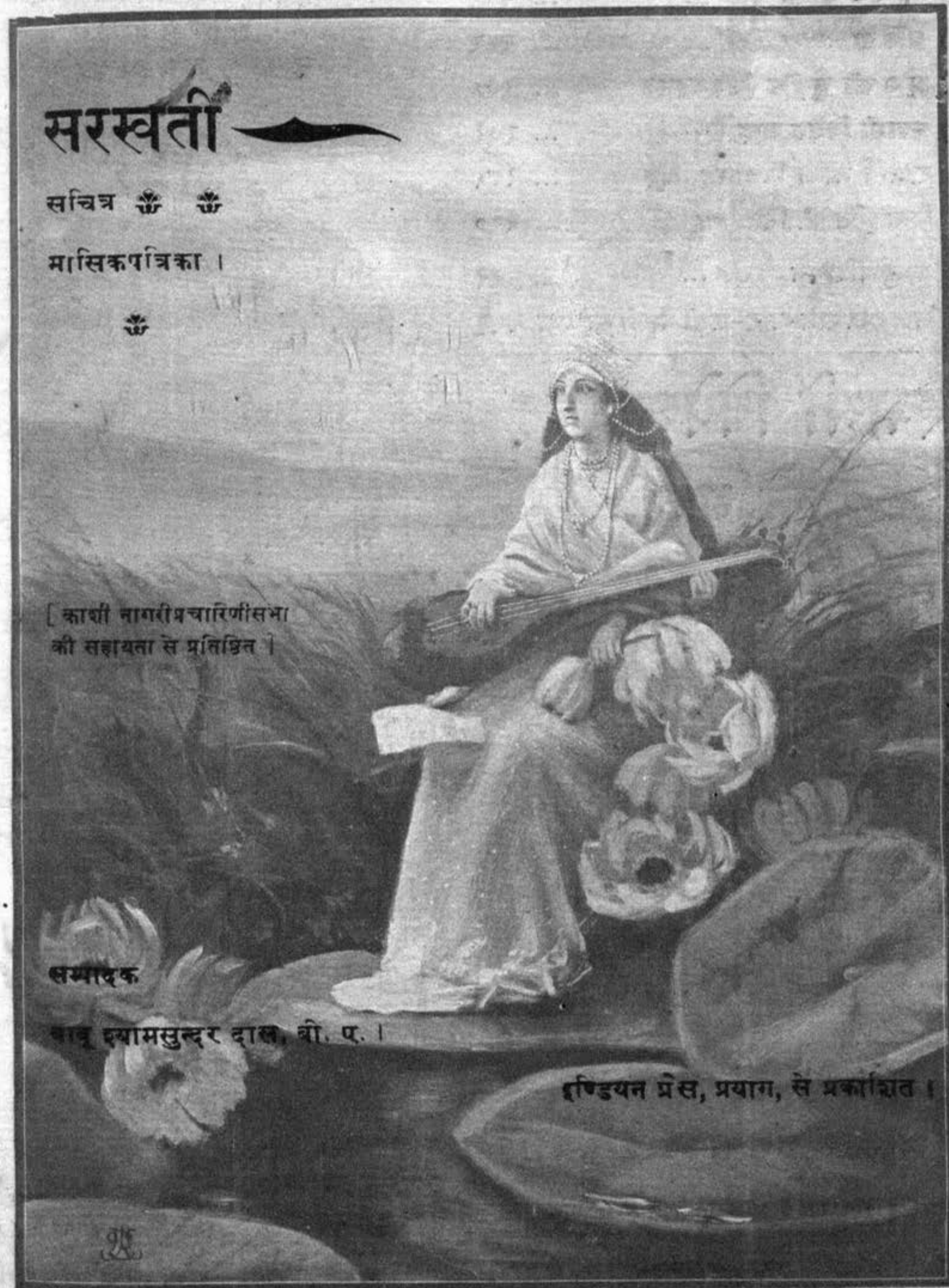
असल अर्क कपूर

हैजे को अनमोल दवा। कहीं हैजा फैला होवे तो रोज दो चार बूंद अर्क कपूर पीवो तो फिर हैजा होने का डर न रहेगा। हैजा होने पर जल्द अर्क कपूर पिलाओ क्योंकि पहली हालत में इस दवा के सेवन से सौ में नब्बे आदमियों को आराम होता है। गर्मी के दस्त व अजीर्ण में भी यह महोपकारी है। मोल ।) शीशी। डाक म० १ से ४ शीशो तक ।=) आना।

कोला टौनिक

अफ्रिका देश के कोला नामक फल से यह बनता है। यह एक अपूर्व बलकारक दवा है। अधिक मिहनत, चिन्ता, शोक वा हवा पानी के हेरफेर आदिक कारणों से शरीर क्षीण हुआ होवे तो कोला पीओ। इससे नये बल का संचार होता है। घोड़े की सवारी पहाड़ की चढ़ाई कुस्ती वा कसरत वक्तृता वा कथा नाच वो गाना पढ़ना वा पढ़ाना चिन्ता वो विचार आदि कामों में पहिले कोला पीओ। दम जल्दी नहीं भरेगा। दिमाग नहीं थकेगा। शरीर पुष्ट होने के पहिले छोटी उम्र में विवाह आदिक से शरीर शीघ्र ही शिथिल हो गया हो तो कोला का सेवन करो बल बढ़ेगा। मदिरा के दोषों को मिटाने में कोला अमृत है। कुछ काल तक कोला के खाने से मदिरा से चित्त हटता है; मदिरा के दोष अजीर्ण, मन वो शरीर की क्षीणता आदिक नहीं रहती। वास्तव में शराब छोड़ाने की यह एक अनमोल दवा है। कोले के सहारे से अफीम भी छुट जाती है। कोला पीए वो अफीम की मात्रा घटाता जाय। कुछ समय में बिना किसी प्रकार क्लेश के अफीम छूट जायगी। कोला स्वर को साफ करता है, गले में जोर देता है जिससे आवाज ऊँची होती है। गानेवालों को हमेशा कोला पास रखना चाहिए। ३२ पूरी खुराक की एक शीशी १) रु०, डा० म० ।=) आ०। ☞ प्रशंसापत्र और पूरे हाल की छपी हुई पुस्तक मंगा देखिये। डाः एस, के, बर्मन–५, ताराचंद दत्त ष्ट्रीट, सिंदुरियापट्टी, कलकत्ता। यह दवा चौक इलाहाबाद में शिवनन्दनप्रसाद माताप्रसाद के पास भी मिलती है।

भाग ३]   सितंबर १९०२ ई०   [संख्या ९



वार्षिक मूल्य अग्रिम ३)]   [प्रति संख्या ।-)

सूची



राजा रविवर्म्मा कृत पञ्चवटी में सीताजी और स्वर्णमृग

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] सितम्बर १९०२ ई० [संख्या ९

विविध वार्ता

आज कल गवर्मेण्ट की आज्ञा से संयुक्त प्रदेश का शिक्षाविभाग इस बात का विचार कर रहा है कि लड़कों के पढ़ने के लिये जो पुस्तकें हिन्दी में बनाई जावें, उनकी भाषा कैसी हो। अर्थात् वह संस्कृतमिश्रित हो या उर्दू-मिश्रित। इस विषय पर अनेक लोगों से सम्मति ली गई है। हम यहां पर केवल इतना ही कहा चाहते हैं कि स्कूली पुस्तकों की हिन्दी ऐसी हो कि उसका हिन्दीपन बना रहे। यद्यपि हम इस बात के पक्ष में नहीं हैं कि हिन्दी में बिना आवश्यकता के ज़बरदस्ती संस्कृत के कठिन कठिन शब्द भर दिए जांय, और साथ ही यद्यपि हम इस बात का भी विरोध नहीं करते कि इसमें उर्दू के शब्द न आवें, पर हमारा कहना इतना ही है कि किसी अवस्था में हिन्दी का रूप न बिगड़ने पावे। हमारा सिद्धान्त तो यह है कि सरल हिन्दी का प्रयोग सब अवस्थाओं में लाभकारी हो सकता है; पर यह बात विषय और लेखक पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। अतएव भाषा के लिये कोई कसौटी नहीं बनाई जा सकती। उसे लेखकों पर छोड़ देना चाहिए, परन्तु उन्हें इस बात का ध्यान अवश्य दिला देना चाहिए कि भाषा का गौरव उसके भाषा बने रहने ही से वर्तमान रहेगा, संस्कृत या उर्दू बना देने से वह बात चली जायगी। जो लोग यह चाहते हैं कि स्कूली पुस्तकों की भाषा निरी बोलचाल की बड़ी साधारण हो, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि लड़का पढ़ लिख कर सूर, तुलसी, बिहारी, केशव और चन्द की कविता न समझ सका तो, उसका पढ़ना ही वृथा है। युनिवर्सिटी कमीशन ने यह प्रस्ताव किया है कि एम० ए० की परीक्षा के लिये यदि कोई अंग्रेजी साहित्य ले तो उसे देशभाषा भी अवश्य पढ़नी होगी। अब हमारा प्रश्न यह है कि यदि हिन्दी में एम० ए० पास करके भी कोई हिन्दी काव्य को भली भांति न समझ सका तो उस परीक्षा और उस पढ़ने से ही क्या लाभ है! इसलिये हमारी सम्मति में ऐसा उद्योग होना चाहिए, और ऐसी पुस्तकें बननी चाहिएं जो क्रमशः कड़ी होती जांय और जिनके अध्ययन से सब प्रकार की हिन्दी समझ में आसके।

इस स्थान पर हम इस बात पर पुनः हिन्दी के लेखकों और गवर्न्मेण्ट का ध्यान दिलाया चाहते हैं कि यदि गद्य के विषय में इन सब बातों के विचार करने की आवश्यकता है तो पद्य के विषय में भी यह विचार लेना आवश्यक है कि क्या नीचे की श्रेणियों के लड़कों को ब्रजभाषा की कविता पढ़ाई जाय। हमारी सम्मति में छोटे छोटे बालकों को इस कविता के पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम कई बेर लिख चुके हैं कि प्राचीन काल में हिन्दी का गद्य और पद्य दोनों ब्रजभाषा में था; परन्तु अब गद्य की भाषा निराली होगई है और वह अब बोली तथा लिखी भी जाती है। इस लिये यह आवश्यक है कि पद्य की रचना भी उसी भाषा में हो जिसमें गद्य लिखा जाता है। हम हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों से प्रार्थना करते हैं कि वे बालकों के लिये तो खड़ी बोली में पद्य रच कर इस अभाव की कुछ अंश में पूर्त्ति कर दें। पण्डित श्रीधर पाठक खड़ी बोली के सब से प्रसिद्ध कवि हैं, इसलिये उन्होंकी कविता से १७ प्रकार के छन्दों को उद्धृत करके हम आशा करते हैं कि हिन्दी के कविगण ब्रजभाषा के छन्दों ही में खड़ी बोली की रोचक कविता बनाने का उद्योग छोड़ दें। उन्हें बिना किसी सङ्कोच के अन्य भाषाओं के छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित छन्दों में जो प्राचीन हैं उनके नाम दिए गए हैं।

१ (नवीन)

अहो आइये आज गुण उस कर्ता के गाइये
जिसके कृपा कटाक्ष से सकल मनोरथ पाइये ॥

२ (फारसी)

किया चाहिये पहले उसका स्मरन।
कि जिसके चरन में जगत का शरन ॥

३ (नवीन)

यह भूमि भारती अब क्या पुकारती।
इसकी ही बुद्धि से तो हुई इसकी दुर्गती ॥
होते हैं पाप घोर लाखों अरब करोड़।
गुवती विपति भोगे हैं षोड़श कलावती ॥

४ (भुजङ्ग प्रयात)

पृथीराज जैचन्द जब से भये हैं।
उसी काल से इसके दिन फिर गये हैं ॥
परस्पर के विद्वेष की चण्ड ज्वाला
बढ़ी देश में भीमरूपा कराला
किया भ्रष्ट उसने प्रजा भारती को
बिगाड़ा सभों की विशुद्धा मती को
हुआ म्लेच्छ आवास सब देश भर में
अविद्या गई छाय प्रत्येक घर में
कहाए सभी आर्य हिन्दू औ काफिर
पताका विमल देश यश की गयी गिर

५ (प्लवङ्गम)

स्वच्छ स्वेत हिम युक्त हिमाचल चोटियां
रजतमयी कैलास शिखर की जोटियां
चमक रहीं चहुं ओर अतुल छबि छाजतीं
भारत सुजस समूह समान बिराजतीं

६ (रोला)

सुन के नव घनघोर हुए बनगज मदमाते
बार बार हो मुदित हर्ष चिंघार सुनाते
जिनके विशद कपोल विमल उत्पल आभाधर
लसैं दान में सने घने लिपटे हैं मधुकर

७ (नवीन)

जिन्के उपल नील उत्पलनिभ जलभरविनत
नवल घन चुम्बित
जिन पर त्यों सब ओर विकल रव निर्झर
विमल बहैं छविमण्डित
विलसैं मुदित मयूर नृत्यरत अगनित वृन्द
अमित आनन्दित
सो मम प्राणप्रिये पर्वतवर करैं चाहयुत
चित्त उमङ्गित

८ (नवीन)

अर्जुन साल कदम्ब केतकी के कानन कम्पाय-
मान कर
उनके कुसुमों के सौरभ से होवै गर्भित।
ऐसा सुखद समीर मेघ जल सीकर से

होकर शीतलतर
किसके मन को करै नहीं उत्सुक और चिन्तित॥

९ (वंशस्थ)

चलावैं चन्दन में भिगोई पंखियां
उरोजमण्डलपै सजावैं हार हैं॥
अलापैं वीणा स्वर सूक्ष्म रागिनी
जगावैं यों मानों प्रसुप्त काम हैं।

१० (नवीन)

शोचनीय मम दशा कथा मैं कहूं आप सो सुनलीजै
प्रेमव्यथित अबला पर अपनी दयादृष्टि योगी कीजै
केवल प्रेम प्रेरणा के वश छोड़ा अपना गेह
धारण किया प्राणपति के हित पुरुष वेष निज देह

११

मचा करो गलियों में झगड़े
घर में किन्तु सुमति चहिये
भाई बहनें जहां रहें मिल
वहां लड़ाई नहिं चहिये
चिड़ियां भी मिल कर रहती हैं
अपने घोसों के अन्दर
बड़ी शरम की बात एक ही
घर के बालक लड़ें अगर

१२

पत्र पुष्प बिन देख कमलिनी को
मधुकर अब त्याग चले
श्रवण सुखद गुञ्जित रव करते
उत्सुक मन अनुराग भरे।

१३ (वसन्त तिलक)

I

हे मित्र! आज प्रिय पत्र मिला तुम्हारा
पढ़के प्रसन्न अति चित्त हुआ हमारा
अबलों परन्तु प्रिय मित्र! कहो कहां थे?
उनके यहां थे अथवा अपने यहां थे?

II

क्यों बात सारी अपनी हमसे छिपाते
क्या क्या करो हो हमको नहिं क्यों बताते
कोई कहे कि तुम हो पति पण्डितों के
विद्या घमण्ड जड़ता अघ मण्डितों के
कोई कहै है तुमको रणवीर बांके
पहले तुम्हारे पुरखे नृप थे यहां के
बाणिज्य में निपुण कोई तुम्हें बताता
कोई कला कुशल ज्ञान गुणी गिनाता

१४ (नवीन)

योग्यता उपेक्षित रहती है
विज्ञता अनादृत रोती है।
आपस का नेह नस जाने से
शिष्टता भ्रष्ट पद होती है।

१५ (विशिष्ट आर्या)

प्रीति पत्र प्रिय! तेरा आया
पञ्जाब प्रान्त से जो था प्रेरा
हुआ प्रसन्न घनेरा पढ़कर
प्रेमानुरक्त मन मेरा

१६ (मालिनी)

खिलित न कुसुमी रङ्ग सिन्दूर कासा
अति पवन चले से वेग जिसका बढ़ा है
निज तट विटपों की चोटियों से लिपट के
विकट प्रबल ज्वाला दाह कर्ती फिरै है

१७ (दोहा)

चाँद सूर्य तारे सभी पिण्डे हैं ये गोल
जिनसे इस आकाश की भरी हुई है पोल
ये गोले इस पोल में रहें अधर सब काल
आकर्षण की शक्ति से नियमित इनकी चाल

इन छन्दों के देखने से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि यदि हिन्दी के प्रेमी कविगण ध्यान दें तो वे खड़ी बोली के लिये बड़ी सुगमता से यह निश्चय कर सकते हैं कि किस किस प्रकार के छन्द इसमें हो सकते हैं जिसमें अन्य लोगों को कविता करने में सुबीता हो जाय॥

* * *

हमको इस बात को प्रकाशित करते बड़ा आनन्द होता है कि संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा के कामों से प्रसन्न

होकर उसकी वार्षिक सहायता ४००) से ५००) कर दी है। यह रुपया गवर्न्मेंण्ट प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये देती है और सभा को प्रति वर्ष एक रिपोर्ट अपने काम की गवर्न्मेंण्ट के पास भेजनी पड़ती है। इस खोज को प्रारम्भ हुए आज तीन वर्ष के लगभग हो चुके और सभा अब तक दो वार्षिक रिपोर्टें गवर्न्मेंण्ट के पास भेज चुकी है। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पर प्रसन्न हो कर गवर्न्मेंण्ट ने उसे अपने व्यय से छापना प्रारम्भ कर दिया है और वार्षिक सहायता बढ़ा कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। सभा के लिये यह बात बड़े गौरव की है।

* * *

दिल्ली दरबार की तय्यारियां बड़े धूम धाम से हो रही हैं। लार्ड कर्जन ने भारतवर्ष के चुने चुने सम्पादकों को भी न्योता भेजा है। हिन्दी पत्रों के जिन जिन सम्पादकों को न्योता भेजा है उनमें भारतमित्र और वेंकटेश्वर समाचार का नाम न देख कर हमको बड़ा आश्चर्य और दुख हुआ। ये दोनों हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध पत्र हैं और इनका प्रचार सब प्रान्तों में है। गवर्न्मेंण्ट को उचित था कि इन्हें भी अवश्य बुलाती। काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने गवर्न्मेंट से प्रार्थना की है कि ये दोनों पत्र तथा हिन्दी का एकमात्र दैनिकपत्र हिंदोस्थान भी बुलाया जाय। हमें आशा है कि लार्ड कर्जन सभा की प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

* * *

हमारे पास कई पुस्तकें और रिपोर्टें समालोचना के लिये आई हुई हैं। हमें आशा थी कि हम उनकी समालोचना इस संख्या में कर सकेंगे। पर दुःख है कि कई कारणों से हम ऐसा न कर सके। जिन जिन महाशयों ने ये पुस्तकें हमारे पास भेजी हैं वे हमें इस बेर क्षमा करें। अगामी संख्या में हम उनके विषय में अपने सम्मति प्रकाशित करेंगे॥

प्रतिभा

प्रतिभा से हमारा अभिप्राय उस शक्ति से है जिसे अंगरेज़ी में जीनियस (Genius) कहते हैं। इस देश के रुद्र नामक एक प्राचीन पण्डित ने प्रतिभा का जो लक्षण कहा है वह यह है—

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।

अर्थात् जिस बुद्धि अथवा जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य को नए नए विचार सूझते हैं उसका नाम प्रतिभा है। हमारे देश के नए और पुराने सभी विद्वानों ने प्रतिभा-शक्ति की प्राप्ति प्रायः कवियों ही के विषय में कही है; परन्तु इस प्रकार का कथन युक्तिगर्भित नहीं जान पड़ता। प्रतिभा एक शक्ति-विशेष का नाम है; उसके पाने के अधिकारी केवल कवि ही नहीं हो सकते; दार्शनिक, तार्किक, आलङ्कारिक, चिकित्सक, गणितवेत्ता और ज्योतिर्विद् इत्यादि सब शास्त्रों और सब विषयों के जाननेवाले उसे पा सकते हैं और उसके बल से नए नए आविष्कारों और विचारों की उत्पत्ति करके अक्षय्य कीर्त्ति सम्पादन कर सकते हैं। अतः यह कहना ठीक नहीं कि केवल कवि ही प्रतिभावान् होते हैं।

२। प्रतिभा मनुष्य के अधःपात का चिन्ह है! यह सुनकर प्रायः सबको आश्चर्य्य—महा आश्चर्य्य—होगा; और होना ही चाहिये; क्योंकि, जिस गुण को, आज तक, सब कोई एक अलौकिक शक्ति अथवा एक अलौकिक ऐश्वरीय प्रसाद समझते आए हैं, उसको मनुष्य के अधःपतन अथवा मनुष्य की क्षीणता का चिन्ह बतलाना सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु योरप के विद्वानों ने, अनेक काल पर्य्यन्त, अनेक खोज और परीक्षाएं करके यह बात सिद्ध करदी है कि प्रतिभा का होना एक प्रकार का रोग है; और वह रोग उस प्रकार के रोगों में से है जिस प्रकार के उन्माद (विक्षिप्तता = पागलपन) और अपस्मार (मिर्गी)

आदि रोग होते हैं! इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सारे प्रतिभाशाली पुरुष एक विशेष प्रकार के पागल होते हैं!! अतएव हमारे विश्व-विख्यात कालिदास, भवभूति और भास्कराचार्य आदि महापुरुष सब पागल थे!!!

३। अपस्मार और विक्षिप्तता मानसिक विकार रोग हैं। उनका सम्बन्ध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। इन विकारों की परस्पर इतनी संलग्नता है कि प्रतिभा को अपस्मार और विक्षिप्तता से अलग करना और प्रत्येक का परिमाण समझ लेना बहुत ही कठिन है। इसी लिये प्रतिभावान् पुरुषों में कभी कभी विक्षिप्तता के कोई कोई लक्षण मिलने पर भी मनुष्य उनकी गणना बावलों में नहीं करते। प्रतिभा में मनोविकार बहुत ही प्रबल हो उठते हैं; विक्षिप्तता में भी यही दशा होती है। जैसे विक्षिप्तों की समझ असाधारण होती है अर्थात् साधारण लोगों की सी नहीं होती; एक विलक्षण ही प्रकार की होती है; वैसे ही प्रतिभावानों की भी समझ असाधारण होती है। वे प्राचीन मार्ग पर न चलकर नए नए मार्ग निकाला करते हैं; पुरानी लीक पीटना उनको अच्छा नहीं लगता। प्रतिभाशाली कवियों के विषय में किसी ने सत्य कहा है—

लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलै कपूत।
बिना लीक के तीनि हैं, शायर, सिंह, सपूत॥

जिनकी समझ और जिनकी प्रज्ञा साधारण है वे सीधे मार्ग का अतिक्रमण नहीं करते; विक्षिप्तों के समान प्रतिभावानही आकाश पाताल फाँदते फिरते हैं। इसीसे विक्षिप्तता और प्रतिभा में समता पाई जाती है।

४। जिस वस्तु का जो साधारण स्वरूप है उस स्वरूप के किसी अवयव की जब आश्चर्य-जनक वृद्धि हो जाती है तब प्रायः यह देखने में आता है कि उस वस्तु के और किसी अवयव अथवा अवयवों का आकार छोटा और पतला पड़ जाता है। बहुधा यह देखा गया है कि जिन मनुष्यों का डील डौल बहुत बड़ा होता है उनके विचार क्षुद्र होते हैं और जिनके विचार उन्नत होते हैं उनका डील डौल सामान्य होता है। जिनमें शरीर की प्रकाण्डता पाई जाती है उनमें कल्पनाओं की न्यूनता होती है; और जिनमें कल्पनाओं की प्रकाण्डता पाई जाती है उनमें शरीर के किसी न किसी अवयव की न्यूनता अथवा क्षीणता देखी जाती है। अर्थात् किसी बात में बढ़ जाने से उस बढ़ती का प्रायश्चित्त करना ही पड़ता है। जितने प्रतिभाशाली पुरुष हैं उनके मस्तिष्क में कल्पनाओं की उत्तुङ्ग तरङ्ग-मालाएं सदैव ही उठा करती हैं; यही कारण है जो उनके शरीर में प्रायः कोई न कोई न्यूनता पाई ही जाती है। इस प्रकार की न्यूनता जीवित दशा में यदि प्रत्यक्ष न भी देख पड़ी तो मरने पर मस्तिष्क की परीक्षा करनेवाले डाक्टरों को उसके कोई न कोई ऐसे चिन्ह अवश्य ही मिलते हैं जो प्रतिभाहीन मनुष्यों में नहीं पाए जाते।

५। शारीरिक और मानसिक विकारों की जब हम परीक्षा करते हैं तब यह देखते हैं कि उनमें से बहुतेरे विकार विक्षिप्त और प्रतिभाशाली पुरुषों में तुल्यतया पाए जाते हैं। बेपरवाही, सन्देह, अभिमान, अत्यल्प कारणवश अथवा अकारणही क्रोध और हर्ष, छोटी बात को बढ़ाकर कहना, जिसका अस्तित्वही नहीं उस विषय का विस्तृत वर्णन करना—इत्यादि बातें जैसे विक्षिप्तों में पाई जाती हैं वैसेही प्रतिभाशाली पुरुषों में भी पाई जाती हैं। विक्षिप्तों में प्रायः यह देखा गया है कि उनके कान बड़े होते हैं; उनकी डाढ़ी छोटी होती है; उनके दांत एक से नहीं होते हैं; उनका सिर कभी छोटा और कभी बड़ा होता है; उनका शरीर छोटा अथवा अनियमित होता है; उनको सम्भोग सुख की इच्छा कम रहती है और बात चीत करने में उनके मुख से बहुधा रुक रुक कर शब्द निकलते हैं। ये सब शारीरिक लक्षण प्रतिभाशाली विद्वानों

में भी प्रायः पाये जाते हैं। इस देश के प्रतिभा-वानों के मानसिक ग्रैार शारीरिक विकारों का पूरा पूरा वर्णन किसीने नहीं लिख रक्खा ; इस-लिये इन बातों पर सहजही विश्वास नहीं ग्राता ; परन्तु योरप के विद्वानों ने बड़े परिश्रम से ग्रैार बड़े खोज से इन सब का पता लगाया है ग्रैार पता लगाकर पागलखानों में ग्रनेक वर्ष पर्य्यन्त रहकर विक्षिप्तों के ग्राकार ग्रैार विकारों से उनकी तुलना करके ये सिद्धान्त स्थिर किए हैं।

६। ग्ररिस्टाटल, प्लेटो, ग्रे, गोलडस्मिथ, तामस मूर, चार्लस् लैम्ब इत्यादि योरोपीय प्रतिभावानों के ग्राकार छोटे थे। इस देश के विद्वानों में से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ग्रैार वामन शिवराम ग्रापटे का ग्राकार भी लम्बा न था। बाबू रमेशचन्द्रदत्त भी एक मध्यम ग्राकार के पुरुष हैं। ईसाप, गालबा, पोप, स्काट, बाइरन ग्रैार गिबन इत्यादि में से कोई कुबड़ा, कोई लंगड़ा ग्रैार कोई टेढ़े पैरों का था। कानपुर के पण्डित प्रतापनारायण की भी कमर कुछ झुकी हुई थी। डिमास्थनीज़, सिसरो, ग्ररि-स्टाटल, वाल्टर स्काट, मिल्टन ग्रैार नेपोलियन ग्रत्यन्त दुबले पतले थे। बेकन, न्यूटन, पोप ग्रैार नेलसन बाल्यकाल में बहुत ही ग्रशक्त ग्रैार रोगी थे। ईसाप, ग्ररिस्टाटल, डिमास्थनीज़, वर्जिल ग्रैार डारविन तोतले थे। मिल्टन, वेंकटाध्वरि ग्रैार सूरदास ग्रन्धे थे। कानपुर के प्रसिद्ध कवि ललिताप्रसाद जी को भी नेत्रों से कम देख पड़ता है। इंगलैण्ड में जितने बड़े बड़े कवि हो गए हैं वे प्रायः सभी निःसन्तान थे। उदाहरणार्थ—शेक्स-पियर, बेन जानसन, मिल्टन, ड्राइडन, एडिसन, पोप, गोलडस्मिथ ग्रैार कैापर इत्यादि। न्यूटन, पिट, फाक्स, ह्यूम, गिबन, मेकाले, लैम्ब इत्यादि प्रति-भाशाली विद्वानों ने विवाहही नहीं किया। शेक्स-पियर, बाइरन, कोलरिज, एडिसन ग्रैार कारलाइल ग्रादि ने विवाह तो किया परन्तु उससे वे सुखी नहीं हुए।

जैसे विक्षिप्त ग्रैार ग्रर्द्धविक्षिप्त मनुष्यों की ग्राकृति उनके माता पिता की ग्राकृति से बहुधा कम मिलती है, वैसे ही प्रतिभाशालियों की भी ग्राकृति उनके माता पिता की ग्राकृति से नहीं मिलती। जूलियस सीज़र, नेपोलियन, वालटेर ग्रैार बाइरन इस बात के प्रमाण हैं।

मरने के ग्रनन्तर, प्रतिभाशाली पुरुषों के मस्तकों की परीक्षा करने पर, यह देखा गया है कि उनकी बनावट में ग्रैार साधारण मनुष्यों के मस्तकों की बनावट में कभी कभी बड़ा ग्रन्तर पाया जाता है। विक्षिप्तों के मस्तकों में जो न्यूनाधिकता रहती है वही बहुधा प्रतिभावानों के मस्तकों में रहती है। यह न्यूनाधिकता नीचश्रेणी की मनुष्य जातियों में भी पाई जाती है। इन्हीं कारणों से यह सिद्धान्त ग्रैार भी दृढ़ होता है कि प्रतिभाशाली होना मनुष्यत्व की नियत सीमा से नीचे ग्राना है। मस्तिष्क की बनावट की यह विलक्षणता किसी किसी में जन्म से ही होती है ग्रैार किसी किसी में किसी कारणविशेष से बीच में ग्रा जाती है। किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने ग्रथवा घोड़े इत्यादि बलवान पशुग्रों की लात लगने से किसी किसी के सिर में ऐसी चोट ग्रा जाती है, कि सिर की बनावट में ग्रन्तर हो जाता है, जिससे मनुष्य में प्रतिभा का सहसा उदय हो उठता है। विक्षि-प्तता भी मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होने ही से होती है; सिर में चोट लगने से भी कभी कभी किसी किसी की बुद्धि में विक्षेप ग्रा जाता है।

७। प्रतिभा एक ऐसी शक्ति है कि ग्रपस्मार के समान वह समयविशेष पर सहसा स्फुरित हो उठती है; उस समय वह किसी प्रकार रोकने से नहीं रुकती। ग्रपस्मार के ग्राक्रमण में मनुष्य जैसे बहिर्ज्ञानहीन हो जाता है वैसे ही प्रतिभा के स्फुरित होने पर वह ग्रापे में नहीं रहता। उस समय वह एक विलक्षण शक्ति के वशीभूत होकर उसीकी प्रेरणा के ग्रनुसार काम करने लगता है ग्रैार वे बातें जिन से वह पहले नितान्त ग्रनभिज्ञ था, बिना प्रयास कहने लगता है; जिन

विषयों का उसे कुछ भी ज्ञान न था उन विषयों पर विलक्षण वाक्पटुता दिखलाने लगता है; और जिन स्थानों को उसने कभी पहले नहीं देखा था उनका उनके अनुरूप विस्तृत वर्णन करने लगता है। प्रतिभा के द्वारा नई नई बातों का आविर्भाव इस कारण नहीं होता कि वह उनको आविर्भूत करना चाहती है; किन्तु इस कारण होता है कि आविर्भाव करना प्रतिभा का स्वभावही है। वह आविर्भावरूप कार्य्य किए बिना रही नहीं सकती। इस प्रतिभा के विकाश में जो आनन्द मिलता है वह वर्णनातीत है। एक विद्वान् ने लिखा है कि लेखनकला किसीकी इच्छा पर अवलम्बित नहीं रहती, अर्थात् इच्छा करने पर उसे कोई अपने आधीन नहीं कर सकता; उसकी सिद्धि एक प्रकार के मनोजन्य सुखद ज्वर के वेग पर अवलम्बित रहती है। वह कहता है कि मैं जो कुछ लिखता हूं उसे न तो अपने देश के लाभ के लिये लिखता हूं; न भाषा की उन्नति के लिये लिखता हूं; और न कीर्ति के लियेही लिखता हूं। मुझमें जो लेखन-शक्ति है उसे काम में लाने से मुझे जो एक अलौकिक आनन्द मिलता है, उसीकी प्राप्ति के लिये मैं लेखनी उठाता हूं। यह उक्ति बहुत यथार्थ है; इसकी यथार्थता का अनुभव केवल प्रतिभाशील जनही कर सकते हैं। प्रतिभावानों में इस अद्भुत शक्ति के उदय होने के जो कारण हैं भविष्यद्वादी महात्माओं में उनकी उक्तियों के भी वही कारण हैं; और विक्षिप्तों में उनके कार्य, उनकी बातचीत, और उनके असम्बद्ध प्रलापों के भी वही कारण हैं।

८। अन्तरात्मा की प्रेरणा से समय समय पर प्रतिभा विकसित हो उठती है और उस प्रेरणा के न रहने से मुकुलित हो जाती है। जिस प्रकार विक्षिप्त मनुष्य कभी कभी, कोई कोई सदैव ही, एकान्त में चुप चाप बैठे रहते हैं, किसीसे कुछ बोलते नहीं, वैसेही प्रतिभाशील पुरुष लिखने अथवा विचार करने के समय, एकान्त में चित्त को एकाग्र करके प्रतिभा के विकाश की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जिस समय प्रतिभा का विकाश होता है उस समय वे अपने अस्तित्व को भूल जाते हैं; उनकी दशा पिशाचग्रस्त मनुष्य की सी हो जाती है। ऐसी दशा को प्राप्त होने पर प्रतिभावानों को शारीरिक पीड़ा पहुँचने पर भी उसका अनुभव उन्हें नहीं होता। उस समय वे एक के दो मनुष्य हो जाते हैं, एक तो प्रतिभाविशिष्ट आत्मा और दूसरा इन्द्रियगोचर पञ्चभूतात्मक देह। ऐसी अवस्था बहुत काल तक नहीं रहती; परन्तु जब तक वह रहती है तब तक प्रतिभावानों के मुख से अथवा उनकी लेखनी से जो कुछ निकलता है वह उससे सहस्र गुणित अधिक अच्छा होता है जो प्रतिभा के मुकुलित हो जाने पर लिखा अथवा कहा जाता है। यही कारण है जो किसी किसी प्रतिभावान् के ग्रन्थ में कोई कोई स्थल अत्यन्त सामान्य और कोई कोई अत्यन्त उन्नत देखे जाते हैं।

९। प्रतिभा के जागृत होने पर मनुष्य जब किसी वस्तु की भावना करने लगता है तब वह उसमें इतना लीन होजाता है कि फिर उसे और किसी बात का ध्यान नहीं रहता। उस समय यदि उसके सिर पर दुन्दुभी का घोरनाद भी हो तो वह भी उसे न सुन पड़े। न्यूटन की प्रतिभा का जिस समय उद्बोधन होता था, उस समय वह अपने लिखने के कमरे को छोड़ कर जब किसी दूसरे कमरे में किसी वस्तु को लाने जाता तो वहां से वह प्रायः रिक्तहस्त ही लौट आता था। वहाँ पहुँचते पहुँचते उसे अपने अभीष्ट कामका विस्मरण हो जाता था। एक बार अपनी भानजी की उँगली को तमाखू समझ कर वह अपने हुक्के में भरने लगा था! प्रतिभाशील पुरुष कभी कभी अपने घर का मार्ग तक नहीं ढूंढ़ पाते हैं; घोड़े से उतर कर चलते चलते उसे खो तक देते हैं; और कुछ काल के लिये अपना अथवा अपने नगर इत्यादि का नाम तक भी भूल जाते हैं!!! प्रतिभा के उद्बोधन होने पर जो कुछ वे लिखते अथवा कहते हैं वह सब, प्रतिभा के मुकुलित हो

जाने पर, किसी किसी को विस्मरण तक हो जाता है। अपने ही लेखों को वे नहीं पहचान सकते; उन को देख देख कर उन्हें आश्चर्य्य होता है; और हजार प्रयत्न करने पर भी प्रतिभा के पुनर्वार जागृत हुये बिना वे फिर वैसे लेख नहीं लिख सकते। जितनी देर तक प्रतिभा की सत्ता रहती है उतनी देर तक प्रतिभावान् को बिना प्रयास नई नई उक्तियां सूझती चली जाती हैं और नए नए विचार उसके ध्यान में आते जाते हैं। उस समय प्रतिभावान् को, प्रतिभारूपी दर्पण के भीतर, उसके भावना किए हुए विषयों के चित्र से दिखलाई पड़ते हैं। उन चित्रों को वे प्रत्यक्ष देखते से जाते हैं और तदनुकूल वर्णन मुख से करते चले जाते हैं। मोरोपन्त महाराष्ट्र देश में एक विख्यात कवि हो गए हैं। आर्या छन्द में उन्होंने अद्वितीय कविता की है। एक बार किसीने उनसे पूछा कि किस प्रकार आप इतना शीघ्र ऐसी अच्छी कविता करते हैं। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि "पूना में पेशवाओं के राजमन्दिर से दक्षिणा ले लेकर जिस प्रकार हजारों ब्राह्मण प्रति दिन फाटक से बाहर निकला करते हैं, उसी प्रकार ईप्सित अर्थों से भरे हुए शब्दसमूह मेरे मुख से, बिना प्रयास, आप ही आप निकला करते हैं"। यह नितान्त सत्य है। सत्यमेव प्रतिभावानों को कोई प्रयास नहीं पड़ता; प्रतिभा के स्फुरित होने पर उनके मुख से नई नई उक्तियों का निकलना एक सहज बात है। विक्षिप्तों का मुख प्रायः बन्द नहीं रहता; वे सदैव ही कुछ न कुछ कहा ही करते हैं। प्रतिभावान् भी एक प्रकार के विक्षिप्त ही हैं!

१०। विक्षिप्तों के समान प्रतिभाशाली पुरुष बहुधा उदासीन रहते हैं। किसी किसी समय उनपर उदासीनता ऐसी छा जाती है कि उनको, उस समय, बात चीत करना विष सा जान पड़ता है। ऐसी अवस्था में चुपचाप बैठना अथवा पड़ा रहनाही उनको अच्छा लगता है। कोई कोई भंग अफीम और मद्य आदिक मादक पदार्थों के वशीभूत हो जाते हैं। अधिक मद्य पीनेही से सिकन्दर की मृत्यु हुई; कोलरिज को भी इसी कारण अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। बाबू हरिश्चन्द्र की तो नहीं जानते; परन्तु, सुनते हैं, उनके पिता जो एक प्रसिद्ध कवि थे, बहुत भंग पीते थे; भंगही के कारण स्यात् वे अल्पायु भी हो गए। योरप के प्रतिभाशाली विद्वानों में तो अनेक मद्यप हो गए हैं। उदाहरण के लिये हाफमैन, अडिसन, शेरीडन, केरियू, लैम्ब और टामसन का नाम बस होगा। प्रतिभावान्, कभी कभी उचित अनुचित का विचार भी नहीं करते; चाहै न्याय्य हो चाहै अन्याय्य, जो जी में आता है उसे करही डालते हैं। योरप में इस प्रकार के कई प्रतिभाशाली हुए हैं जिन्होंने अनेक जघन्य काम किए हैं; यहां तक कि अपनी धर्म्मपत्नियों को बुरी तरह मारा है, उन्हें छोड़ दिया है, और उनको जान से मार तक भी डाला है! प्रतिभाशीलों के कोई कोई काम ऐसे होते हैं जिनसे उनकी विक्षिप्तता स्पष्ट प्रकट होती है। उदाहरणार्थ—

जानसन जिस समय लण्डन की सड़कों पर चलता था उस समय सड़क के किनारे के खम्भों को हाथ से बराबर छूता जाता था; यदि वह किसी खम्भे को छूना भूल जाता था तो लौट कर उसे छू आता था; बिना उसे छुए वह कदापि आगे न बढ़ता था। नेपोलियन में भी एक ऐसाही पागलपन था। जब वह बाहर निकलता था–फिर चाहै वह उस समय अपनी सेना के अग्रभागही में क्यों न हो—तब जितने घर उसे देख पड़ते थे सब की खिड़कियों को गिन कर वह जोड़ता जाता था! ये पागलपन के चिन्ह नहीं तो क्या हैं?

विक्षिप्त प्रायः बड़े घमण्डी होते हैं और अभिमान से भरी हुई बातें बहुधा किया करते हैं। कोई अपने को राजा बतलाता है; कोई नवाब; कोई कुछ; कोई कुछ। प्रतिभावानों की भी यही दशा होती है। वे प्रायः अभिमानी होते हैं; अपने सम्मुख किसीको कुछ नहीं समझते; दूसरे

विद्वानों का उत्कर्ष उनसे सहाही नहीं जाता। छोटी छोटी बात पर वे लड़ पड़ते हैं और अपनी बात रखने के लिये बड़ी बड़ी पुस्तकें तक लिख डालते हैं। जिन बातों को सुनकर प्रतिभाहीन पुरुषों के मनमें कोई बुरा विकार नहीं उत्पन्न होता, उसे सुनकर प्रतिभाशाली पुरुषों के हृदय में प्रचण्ड पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। थोड़ेही में वे अपना अपमान समझते हैं और किसीके मुख से कोई विनोदात्मक भी बात सुनकर क्रोध से जल उठते हैं। जिन बातों में औरों को स्वप्न में भी किसी प्रकार का अनुचित सन्देह नहीं होता, उन्हीं बातों में वे सन्देह की पर्वतमाला ढूंढ़ निकालते हैं। सारांश यह कि वे बहुतही सूक्ष्मदर्शी और शीघ्र-कोपी होते हैं। प्रतिभाशीलता का यह लक्षण, इस समय, इस देश के भी कई विद्वानों में जागरूक है।

११। ऊपर यह लिखा जाचुका है कि प्रतिभा एक प्रकार की विक्षिप्तता है। यद्यपि इन दोनों मानसिक विकारों में कुछ भिन्नता है, तथापि जहां एक होता है वहां दूसरा भी अवश्यमेव पाया जाता है, चाहे उसकी मात्रा कम हो चाहे अधिक। इटलीनिवासी अध्यापक लोम्ब्रोसो ने इस विषय में एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि योरप के अनेक प्रतिभाशाली पुरुष थोड़े बहुत विक्षिप्त थे। सौदी, कौपर, कालिंस, गालो, ल्यंज़, हैमिल्टन इत्यादि अनेक विद्वानों के नाम लोम्ब्रोसो ने अपनी पुस्तकमें लिखे हैं और प्रत्येक के विषय में ऐसे ऐसे प्रमाण दिए हैं कि उनको पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है और मन में यह भावना दृढ़ता से स्थान कर लेती है कि ये लोग सचमुचही पागल थे। इन प्रतिभावानों की विक्षिप्ततासम्बन्धी बातें इतने विस्तार से दी गई हैं कि उनका समावेश इस निबन्ध में होना असम्भव है। अतः इस विषय की केवल सूचनाही देना हम बस समझते हैं।

१२। जितने प्रतिभाशील पुरुष हैं सब में पूर्ण रूप से प्रतिभा का उदय नहीं होता है। किसी में थोड़ा, किसी में कुछ विशेष और किसी विरले में उसका पूरा पूरा आविर्भाव होता है। इस प्रकार का आविर्भाव मनुष्य की इच्छा के अनुकूल सदैव नहीं होता; किसी किसी महीने में इच्छा करते ही अथवा आपही आप प्रतिभा विकसित हो उठती है; किसीमें बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका अत्यल्प विकास होता है; और किसीमें हजार प्रयत्न करने पर भी वह निकट नहीं आती। विद्वानों ने परीक्षा द्वारा इस बात का पता लगाया है कि गरमी के आरम्भ में विक्षिप्तों की विक्षिप्तता जैसे सहसा प्रबल हो उठती है, वैसे ही प्रतिभा भी उस समय विशेषरूप से विकसित होती है। अर्थात् वसन्त ऋतु में प्रतिभा को अधिक उत्तेजना मिलती है। आज तक जितने प्रसिद्ध ग्रन्थों और आविष्कारों की सृष्टि हुई है, अर्थात् प्रतिभावानों ने जिन नई नई बातों का पता लगाया है, उनका हिसाब इस प्रकार है—

महीना	साहित्य और शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थ	ज्यौतिषिक आविष्कार	प्राकृतिक, रासायनिक और गणितसम्बन्धी आविष्कार	जोड़
जनवरी ...	१०१	३७	०	१३८
फरवरी ...	८२	२१	१	१०४
मार्च ...	१०४	४५	५	१५४
अप्रैल ..	१३५	५२	५	१९२
मई ...	१४९	३५	९	१९३
जून ...	१२५	२४	५	१५४
जुलाई ...	१०५	५२	५	१६२
अगस्त ...	११३	४२	०	१५५
सितम्बर ...	१३८	४७	५	१९०
अकतूबर ...	१८३	४५	४	१३२
नवम्बर ...	०३	४२	५	१५०
दिसम्बर ...	८६	२७	२	११५

इसके देखने से यह तत्काल ध्यान में आ जाता

है कि अप्रैल और मई में सबसे अधिक आविष्कारों की सृष्टि हुई है। इस देश में मई के महीने में प्रचण्ड गरमी पड़ती है, परन्तु यह हिसाब योरप का है जहां मई की गिनती वसन्त में है। अप्रैल और मई के अनन्तर सितम्बर है। इस महीने में आविष्कारों के अधिक होने का यह कारण है कि उपर्य्युक्त हिसाब में कई ऐसे देशों के प्रतिभाशाली विद्वानों के आविष्कार मिले हुए हैं जहां सितम्बर के महीने में भी थोड़ी गरमी पड़ती है। इस हिसाब में साहित्य और शिल्प के केवल उतने ही ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है जिनकी उत्पत्ति का महीना विदित है। वे ग्रन्थ जिनका महीना नहीं किन्तु ऋतु विदित है, यदि ऊपर के हिसाब में जोड़ दिए जावें तो ऋतुओं के अनुसार सब ग्रन्थों की समष्टि इस प्रकार होगी—

वसन्त	३८८
ग्रीष्म	३४७
हेमन्त	३३५
शिशिर	२८०
जोड़	१३५०

अर्थात् वसन्त में सब से अधिक और शिशिर में सबसे कम ग्रन्थों की उत्पत्ति हुई। ऋतुओं के अनुसार रासायनिक और ज्यौतिषिक आदि आविष्कारों का हिसाब इस प्रकार है—

ऋतु	प्रसिद्ध प्राकृतिक, रासायनिक और गणित सम्बन्धी आविष्कार	ज्यौतिषिक आविष्कार
वसन्त	२२	१३१
ग्रीष्म	१०	१२०
हेमन्त	१५	१३५
शिशिर	५	८३

सब प्रकार के ग्रन्थों और आविष्कारों को जोड़ कर ऋतुओं के अनुसार पृथक् करने पर यह फल निकलता है—

वसन्त	५४१
ग्रीष्म	४७७
हेमन्त	४८५
शिशिर	३६८
जोड़	१८७१

अर्थात् वसन्त में सबसे अधिक और शिशिर में सबसे कम आविष्कार हुए। योरपवाले वर्षा और शरद को अलग ऋतु नहीं मानते, इस लिये ऊपर के हिसाब में ये दोनों ऋतु पृथक् नहीं दिखलाई गईं।

इस प्रकार, यह सिद्ध करके कि वसन्त में प्रतिभा का सविशेष उद्बोधन होता है, विद्वानों ने अनेक पागलखानों की रिपोर्टें को जो पढ़ा तो तत्कालही उनको यह विदित हो गया कि वसन्त ही में उन्माद रोग भी लोगों को सबसे अधिक होता है। इस विषय में पागलखानों की रिपोर्टें देखने की तादृश आवश्यकता नहीं; इस देश में सभी इस बात को जानते हैं कि वसन्त में मनुष्य क्या पशु पक्षी तक उन्मत्त हो उठते हैं। अतएव इसमें कोई सन्देह न रहा कि प्रतिभा और पागलपन का आदि कारण एक ही है और प्रतिभाशीलता भी एक प्रकार की विक्षिप्तता है!

१३। प्रतिभावान् पुरुष विशेष करके उन्हीं देशों में अधिक होते हैं जहां शीत बहुत अधिक नहीं पड़ता। जिस देश अथवा जिस प्रान्त में पहाड़ियों की अधिकता होती है; नदियां सब काल बहा करती हैं; हरियाली सब ओर छाई रहती है, वहां प्रतिभा को अधिक उद्दीपन मिलता है। शीतप्रधान देशों में वे प्रान्त, जिनके निकट ज्वालामुखी पर्वत हैं, अथवा जहां भूकम्प हुआ करता है, प्रतिभा के प्रदीप्त होने में बहुत सहायता देते हैं। प्रतिभा के लिये वही देश अधिक हितावह हैं जिनमें न अधिक ऊष्णता ही पड़ती है और न अधिक शीत ही पड़ता है। जहां शीतोष्णता प्रायः सम रहती है वहीं प्रतिभा का पूरा पूरा विकाश होता है। भारतवर्ष, ग्रीस और इटली में जो इतने कवि, दार्शनिक, तत्वज्ञ और ज्योतिषी हो गए हैं उसका कारण इन देशों की प्राकृतिक बनावट, और जल वायु आदि की उपयोगिता ही समझना चाहिये।

१४। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक कोमल,

अशक्त, भीरु और वातप्रकृतिवाली होती हैं ; इस लिये उनमें बहुत कम प्रतिभा देखी जाती है। सशक्त, निर्भय, दृढ़ाङ्ग और पित्तप्रकृतिवाले पुरुषों ही को उन्माद अधिक सताता है। उन्माद और प्रतिभा का पिता एकही है ; इसी लिये जहां भाई का विशेष आवागमन रहता है वहां भगिनी भी पहुंच जाती है।

१५। विक्षिप्तता, अपस्मार और कुष्ठ इत्यादि ऐसे रोग हैं कि ये यदि पिता के हुए तो पुत्र के भी बहुधा हो जाते हैं और वंशक्रमानुसार चलेही जाते हैं। यह बात प्रतिभा के विषय में चरितार्थ नहीं है। प्रतिभाशील पिता का पुत्र भी कभी कभी प्रतिभाशील होता है ; यही नहीं किन्तु प्रपौत्र में भी पिता और पितामह की प्रतिभाशीलता का क्वचित् पता लगता है ; परन्तु भावी सन्तति में उसका संक्रमण इतना साधारण नहीं है जितना साधारण उपर्युक्त रोगों का संक्रमण है। तथापि यह न समझना चाहिए कि इसकारण, प्रतिभा और विक्षिप्तता का अनैक्य सिद्ध होता है। कदापि नहीं। यदि प्रतिभावान् के प्रतिभावान् पुत्र नहीं होता तो पागल बहुधा होता है ; अथवा कभी कभी पागल के प्रतिभावान् उत्पन्न हो जाता है। बाइरन का पिता अर्द्धविक्षिप्त था। सिसरो का पुत्र महा मद्यप था। लूथर और थेमिस्टाक्लिस के पुत्र अविवेकी, दुःशील और सिड़ी थे। इन्हीं कारणों से यह बात फिर भी दृढ़ होती है कि प्रतिभा एक प्रकार की विक्षिप्तता ही है।

१६। नगरों की अपेक्षा ग्रामों का जल वायु प्रतिभा को अधिक उत्तेजित करता है। अनेक प्रसिद्ध प्रतिभाशील पुरुष ग्राम ही में उत्पन्न हुए हैं। ऐसे पुरुष ग्राम छोड़ कर यदि नगर में भी आ बसते हैं, चाहै जितने छोटे वय में वे ऐसा करैं, तो भी उनकी प्रतिभा का बीज उनके मस्तिष्क में पूर्ववत् बना रहता है और संयोग पाते ही अंकुरित हो उठता है। प्रतिभा को प्रदीप्त करने के लिये सुयोग की बड़ी आवश्यकता है। सुयोग न आने से प्रतिभा का विकाश नहीं होता और प्रतिभाशाली पुरुष प्रसिद्ध नहीं होते। कभी कभी किसी किसी ग्राम में एक आध ग्रामीण ऐसा पाया जाता है जो नवीन नवीन पहेलियां बुझाने और नवीन नवीन कहानियां कहने में परम प्रवीण होता है। उसकी बातैं सभी सुनना चाहते हैं; उसके मुख से निकली हुई साधारण बातैं भी अच्छी लगती हैं। कभी कभी वह कोई ऐसी उक्ति कह बैठता है जिसे सुन कर चित्त चमत्कृत हो जाता है। ये सब प्रतिभा के लक्षण हैं। इस प्रकार के प्रतिभाशील पुरुष का संसर्ग यदि अच्छे समाज से न हुआ और यदि विद्या परिशीलन का सुयोग उसे न आया तो उसकी प्रतिभा वहीं ग्राम में पड़े पड़े क्षीण हो जाती है; उसका पूरा चमत्कार देखने में नहीं आता। इससे प्रतिभासम्पन्न मनुष्य के लिये परिमार्जित समाज की सङ्गति और विद्याध्ययन की बड़ी ही आवश्यकता रहती है। कालिदास, श्रीहर्ष, भास्कर, मिल्टन, बाइरन, हाफिज और शेख़ सादी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों को यदि विद्याध्ययन का सुयोग न आता तो उनकी कवित्वशक्ति कदापि स्फुरित न होती और और उनकी प्रतिभा उनके मस्तिष्क ही में मलिन हो जाती।

१७। जो विक्षिप्त पागलखानों में रहते हैं वे कभी कभी सहसा प्रतिभाशीलता के लक्षण दिखलाने लगते हैं। यह कहा ही जा चुका है कि प्रतिभा और विक्षिप्तता का आदि कारण एकही है; उनमें परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। अतएव कभी कभी कोई ऐसी आन्तरिक घटना हो जाती है जिसके कारण विक्षिप्तता के साथ ही प्रतिभा भी आविर्भूत हो उठती है। बाल्यावस्था में हम जिस पाठशाला में पढ़ते थे उसमें एक पण्डित कभी कभी आया करते थे। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और साहित्यशास्त्र से उनको बड़ा प्रेम था। दैवयोग से वे विक्षिप्त हो गए। कभी कभी उनकी विक्षिप्तता इतनी प्रबल हो उठती थी कि वे निकटवर्ती गंगा के घाट पर श्मशान से हड्डियां और नरकपाल इकट्ठा कर लाते और मन्दिरों से

मूर्तियों को फेंक कर वहां उन अशुचि पदार्थों को रख देते थे। परन्तु जब कभी वे पाठशाला में आते थे और विद्यार्थियों को काव्यसंग्रह नाम की हिन्दी पुस्तक पढ़ते देखते थे, तब उनमें विलक्षण प्रतिभा स्फुरित हो उठती थी। उस समय वे सैकड़ों पद्य हिन्दी में कहने लगते थे। उनमें से कुछ दूसरों के बनाए थे; कुछ स्वयं, तत्काल, उन के गढ़े हुए थे। कभी कभी जब दो एक चरण किसी प्राचीन पद्य के वे भूल जाते थे तब तत्क्षण नए बनाकर पद्य को पूरा कर देते थे। यह हमारी देखी हुई बात है। योरप के पागलखानों से विक्षिप्तों की लिखी हुई मासिक पुस्तकें निकलती हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ भी उस देश की भाषाओं में छपे हैं जिनमें केवल विक्षिप्तों की कविताएं संग्रह की गई हैं। इस प्रकार की कविताओं में अनुप्रास और यमक की अधिकता होती है; लालित्य भी रहता है; परन्तु अर्थगौरव की न्यूनता पाई जाती है। जब मनुष्य किसी विषय में उत्तेजित हो उठता है तब उस उत्तेजना के कारण उसके मन को नानाप्रकार के विकार चंचल करने लगते हैं। मन की चंचलता के कारण इन विकारों का वर्णन जो मनुष्य के मुख से निकलता है वही कविता है। जिस प्रकार कोई दुःख आ पड़ने पर अपने इष्टमित्र को देख रोने से दुःख का वेग कम हो जाता है, उसी प्रकार मनोविकारों को मुख से कह डालने से सिर हलका हो जाता है। गद्य की अपेक्षा पद्य में ऐसे वर्णन अधिक हृदयग्राही और विकारगर्भित होते हैं। इसी लिये पद्य में कविता करने की प्रेरणा मनुष्य में स्वभावही से आविर्भूत होती है। विक्षिप्तों के मस्तिष्क में जब किसी कारण से प्रतिभा जग उठती है और उनके चित्त का क्षोभ उनसे सँभाला नहीं जाता, तब वे उसे दूर करने का यत्न करते हैं और प्राकृतिक प्रेरणा के वशीभूत होकर कविता करने लगते हैं।

विक्षिप्तों की प्रतिभा कभी कभी कविता की ओर प्रवृत्त न होकर शिल्प की ओर प्रवृत्त हो जाती है। उनके किए हुए कोई कोई शिल्पकार्य ऐसे अपूर्व होते हैं जिनको देखकर आश्चर्य होता है। शिल्पकार्य की ओर प्रायः वेही विक्षिप्त झुकते हैं जिनको कभी पहले शिल्प का कुछ संस्कार हो जाता है; परन्तु साहित्य—विशेषतया कविता की ओर वे बिना पूर्वसंस्कार के भी प्रवृत्त हो जाते हैं।

१८। कोई कोई ऐसे प्रतिभाशाली होते हैं कि उनके ग्रन्थों में उनकी विक्षिप्तता का पूरा पूरा प्रमाण उनकी अनर्गल, युक्तिहीन और अप्रासंगिक उक्तियों में मिलता है। इस प्रकार की उक्तियों को विचारपूर्वक पढ़ने से मनमें तत्कालही यह भावना उत्पन्न होती है कि जिस समय ग्रन्थकर्त्ता के मुख से वे निकली हैं उस समय उसका चित्त ठिकाने न था। परन्तु किसी किसी के ग्रन्थों में इस प्रकार के प्रमाण नहीं मिलते; तथापि ऐसे मनुष्यों की दिनचर्य्या को देखने, उनके लिखे हुए पत्रों को पढ़ने और उनके इष्ट मित्रों से उनके गुप्त और प्रकट जीवन-चरित का पता लगाने से उनके कार्य्यों में विक्षिप्तता के चिन्ह मिले बिना नहीं रहते। साक्रेटिस और न्यूटन के समान प्रतिष्ठित तत्वदर्शी और विज्ञानी पुरुषों के चरित में भी विद्वानों ने विक्षिप्तता का पता लगाया है! विक्षिप्तों में प्रतिभा का प्रकाश और प्रतिभाशीलों में विक्षिप्तता के चिन्ह देख कर यही कहना पड़ता है कि इस भूमण्डल की प्रत्येक मनुष्य-जाति का भाग्य—अभ्युत्थान अथवा पतन—सदैव विक्षिप्तोंही के हाथ में रहता है!! इससे यह भी सिद्ध होता है कि आजतक जिस देश की जितनी उन्नति हुई है उतनी सब विक्षिप्तोंही की कृपा-कटाक्ष का फल है!!!

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

प्लेग की चुड़ैल

गत वर्ष जब प्रयाग में प्लेग घुसा और प्रतिदिन सैकड़ों ग़रीब और अनेक महाजन ज़मींदार वकील मुख़्तार के घरों के प्राणी मरने लगे तो लोग घर छोड़ छोड़

कर भागने लगे यहां तक कि कई नामी डाकृर भी दूसरे शहरों को चले गए। एक महल्ले में ठाकुर बिभवसिंह नामी एक बड़े ज़मीदार रहते थे। उन्होंने भी अपने इलाके पर जो प्रयाग से ५ मील की दूरी पर था, चले जाने की इच्छा की। सिवा उनकी स्त्री और एक पांच वर्ष के बालक के और कोई सम्बन्धी उनके घर में नहीं था। रविवार को प्रातःकाल ही सब लोग इलाके पर चलने की तयारी करने लगे। जल्दी में उनकी स्त्री ने ठंढे पानी से नहालिया। बस नहाना था कि ज्वर चढ़ आया, हकीम साहब बुलाए गए और दवा दी गई, पर उससे कुछ लाभ न हुआ। सायंकाल को गले में एक गिलटी भी निकल आई। तब तो ठाकुर साहब और उनके नौकरों को अत्यन्त व्याकुलता हुई। डाकृर साहब बुलाए गए, उन्होंने देखते ही कहा कि प्लेग की बीमारी है, आप लोगों को चाहिये कि यह घर छोड़ दें। यह कहकर वह चले गए। अब ठाकुर साहब बड़े असमंजस में पड़े। न तो उनसे वहां रहते ही बनता था, न छोड़के जाते ही बनता था। वह मन में सोचने लगे यदि यहां मेरे ठहरने से बहूजी को कुछ लाभ हो तो मैं अपनी जान भी ख़तरे में डालूं। परन्तु इस बीमारी में दवा तो कुछ काम ही नहीं करती, फिर मैं यहां ठहर कर अपना प्राण क्यों खोऊं। यह सोच जब वह चलने के लिये खड़े होते थे तब वह बालक जिसका नाम नवलसिंह था, अपनी माता के मुख की ओर देखकर रोने लगता था और वहां से जाने से इन्कार करता था। ठाकुर साहब भी प्रेम के कारण मूक अवस्था को प्राप्त हो जाते थे और विवश हो बैठ रहते थे। ठाकुर साहब तो बड़े सहृदय और सज्जन पुरुष थे, फिर इस समय उन्होंने ऐसी निठुरता क्यों दिखलाई, इसका कोई कारण अवश्य था, परन्तु उन्होंने उस समय उसे किसी को नहीं बतलाया। हां, वह बार बार यही कहते थे कि स्त्री का प्राण तो जाही रहा है, इसके साथ मेरा भी प्राण जावै तो कुछ हानि नहीं, पर मैं यह चाहता हूं कि मेरा पुत्र तो बचा रहे, मेरा कुल तो न लुप्त हो जावे। पर वह बिचारा बालक इन बातों को क्या समझता था। वह तो मातृभक्ति के बंधन में ऐसा बंधा था कि रात भर अपनी माता के पास बैठा रोता रहा। जब प्रातःकाल हुआ और ठकुराइन जी को कुछ चेत हुआ तो उन्होंने आंखों में आंसू भर के कहा बेटा नवलसिंह! तुम शोक मत करो, तुम किसी दूसरे मकान में चले जाओ, मैं अच्छी होकर शीघ्रही तुम्हारे पास आऊंगी। पर वह लड़का न तो समझानेही से मानता था न स्वयं ऐसे स्थान पर ठहरने के परिणाम को जानता था। बहू जी तो यह कह कर फिर अचेत हो गईं, पर बालक वहीं बैठा सिसक सिसक रोता रहा। थोड़ी देर बाद फिर डाकृर, वैद्य, हकीम आए, पर किसी की दवा ने काम न किया। होते होते इसी तरह दोपहर होगई तीसरे पहर को बहू जी का शरीर बिलकुल शिथिल होगया और डाकृर ने मुख की चेष्टा दूरही से देखकर कहा 'बस अब इनका देहान्त होगया, उठाने की फिक्र करो'। यह सुन सब नौकरनियां और नौकर रोने लगे और पड़ोस के लोग एकत्रित होगए, सबके मुख से यही बात सुन पड़ती थी 'अरे क्या निर्दई काल ने इस अबला का प्राण लेहोडाला, क्या उसकी सुन्दरता, सहृदयता और अपूर्व पातिव्रत धर्म का कुछ भी असर उसपर नहीं हुआ, क्या इस क्रूर काल को किसीके भी सद्गुणों पर विचार नहीं होता!! एक पड़ोसी जो कवि था, यह सवैया कह कर अपने शोक को प्रकाश करने लगा—

सूर को चूर करै छिन में
अरु कादर को दर धूर मिलावै।
कोविदहूं को बिदारत है,
अरु मूरख को रख गाल चबावै॥
रूपवती लखि मोहत नाहिं,
कुरूप को काटि तूं दूर बहावै।'

है कोउ ग्रैागुण वा गुण या जग
निर्दयी काल जो तो मन भावै ॥"

स्त्रियां कहने लगीं 'हा हा, देखो वह बालक कैसा फूट फूट कर रो रहा है। क्या इसकी ऐसी दीन दशा पर भी उस निठुर काल को दया नहीं ग्राई ? इस ग्रवस्था में बिचारा कैसे ग्रपनी माता के वियोग की व्यथा सह सकैगा! हा इस ग्रभागे पर बचपनहीं में ऐसी विपत्ति पड़ी"! ठाकुर साहब तो मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े थे। नैाकरों ने उनके मुंह पर गुलाब छिड़का ग्रैार थोड़ी देर में वह सचेत हुए, उनकी मित्रमंडली में से तो कोई महाशय उस समय वहां उपस्थित नहीं थे। हां, उनके पड़ोसियों ने जो, वहां एकत्र हो गए थे यह सम्मति दी की स्त्री के मृत शरीर को गङ्गा तट पर ले चल कर दाह क्रिया करनी चाहिये। परन्तु डाकृर साहब ने जो वहां फिर लैाट कर ग्राए थे, कहा कि पहिले तो इस मकान को छोड़ कर दूसरे में चलना चाहिये, पीछे ग्रैार सब खटराग किया जायगा। ठाकुर साहब को भी यह राय पसन्द ग्राई, क्योंकि उन्हांने तो रात ही से भागने का इरादा कर रक्खा था, वह तो केवल उस लड़के के ग्रनुरोध से रुके हुए थे। परन्तु क्या उस लड़के को उस समय भी वहां से ले चलना सहज था? नहीं, वह तो ग्रपनी मृत माता के निकट से जाना ही नहीं चाहत था। बार बार उसी पर जाकर गिर पड़ता था ग्रैार उसकी ग्रधखुली ग्राँखों की ग्रोर देख देख कर रोता ग्रैार माता माता कह कर पुकारता था। उसका रुदन सुनकर देखने वालों की छाती फटती थी ग्रैार उनकी ग्रांखो से ग्रांसुग्रों की धारा बहती थी। ग्रन्त में ठाकुर साहब ने उस बालक को पकड़ कर गोद में उठा लिया ग्रैार गाड़ी में बिठाल कर दूसरे मकान की ग्रोर रवाना हुए। ग्रलबत्तः चलती बार ठाकुर साहब ने स्त्री के मृत शरीर का ग्रोर देखकर कुछ ग्रंगरेज़ी में कहा था, जिसका एक शब्द मुझे याद है, याने फेग्ररवेल् (Farewell)। नैाकर सब ठाकुर साहब ही के साथ रवाना हो गए; परन्तु उनका एक पुराना नैाकर उस मकान की रक्षा के लिये वहीं रह गया। पड़ोसी लोग भी इस दुर्घटना से दुखी होकर ग्रपने घरों को लैाट गए, परन्तु एक पड़ोसी के हृदय पर इन सब बातों का ऐसा ग्रसर हुग्रा कि वह वहीं बैठा रह गया ग्रैार मन में सोचने लगा कि ऐसी दशा में पड़ोसी का धर्म्म क्या है! इस देश की यह रवाज है कि जब तक महल्ले में मुर्दा पड़ा रहता है तब तक कोई नहाता खाता नहीं, जब उसकी दाह क्रिया का सब सामान ठीक हो जाता है ग्रैार लोग उसको वहां से उठा ले जाते हैं, तब पड़ोसी लोग ग्रपने ग्रपने दैनिक कार्यों के करने में तत्पर होते हैं। परन्तु यहां का यह हाल देख कर वह बहुत विस्मित होता था ग्रैार सोचता था कि यदि ठाकुर साहब भय के मारे ग्रपने इलाक़े पर भाग गए तो मृतक की क्या दशा होगी; क्या इस पुण्यवती स्त्री का शरीर ठेलेही पर लदके जायगा? उसने उस बुड्ढे नैाकर के ग्रागे ग्रपनी कल्पनाग्रों को प्रकाशित किया। उसने उत्तर दिया कि ग्रभी ठाकुर साहब को प्रतीक्षा करनी चाहिये, देखें वह क्या ग्राज्ञा देते हैं। वह पड़ोसी भी यही यथार्थ समझ के चुप हो गया ग्रैार संसार की ग्रसारता ग्रैार प्राणियों के प्रेम की निर्मूलता पर विचार करने लगा। उस समय उसे नानक जी का यह पद याद ग्राया "सबै कुछ जीवत को व्यवहार" ग्रैार सूरदास का "कुसमय मीत काको कैान" भी स्मरण ग्राया। पर समय की प्रतिकूलता देख वह इन पदों को गा न सका, मनहीं मन गुनगुनाता रहा। इतने ही में ठाकुर साहब के दो नैाकर वापस ग्राए ग्रैार उन्होंने बूढे नौकर से कहा कि हमलोग पहरे पर मुक़र्रर हैं ग्रैार तुमको ठाकुर साहब ने बुलाया है। वह मक्खन सैादागर के मकान में ठहरे हैं। वहीं तुम जाग्रो। उस बुड्ढे का नाम सत्यसिंह था। जब वह उक्त स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि ठाकुर साहब के चंद मित्र, जो वकील, महाजन ग्रैार ग्रमले थे, इकट्ठे हुए

हैं ग्रोर वे सब एकमत होकर यही कह रहे हैं कि ग्राप ग्रपने इलाके पर चले जाइए, दाह क्रिया के झंझट में मत पड़िए, यह कर्म ग्राप के नैाकर कर देंगे, क्योंकि जब प्राण बचा रहैगा तो धर्म की रक्षा हो जायगी। ठाकुर साहब ने इस विषय में पुरोहित जी की सम्मति पूछी। उन्होंने भी उस समय हां में हां मिलाना ही उचित समझा ग्रोर कहा कि धर्मशास्त्रानुसार ऐसा हो सकता है; इस समय चाहे कोई दग्ध करदे, इसके ग्रनन्तर जब सुभीता समझा जायगा ग्राप एक पुतला बना कर दग्धक्रिया कर दीजिएगा। इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने पुरोहित जी से कहा यह ३०) लीजिए ग्रोर मेरे ग्राठ नैाकर साथ ले जाकर कृपा करके ग्राप दग्धक्रिया करवा दीजिए ग्रोर मुझे इलाके पर जाने की ग्राज्ञा दीजिए। यह कहकर लड़के को साथ लेकर ग्रोर मित्रों से बिदा होकर ठाकुर साहब इलाके पर पधारे ग्रोर पुरोहित जी सत्यसिंह प्रभृति ग्राठ नैाकरों को लेकर उनके घर पर गए। सीढ़ी बनवाते ग्रोर कफ़न इत्यादि मंगवाते सायंकाल हो गया। जब नाइन बहूजी को कफ़नाने लगी, उसने कहा इनका शरीर तो ग्रभी बिल्कुल ठंढा नहीं हुग्रा है ग्रोर ग्रांखें ग्रधखुली सी हैं, मुझे भय मालूम होता है। पुरोहित जी ग्रोर नैाकरों ने कहा यह तेरा भ्रम है, मुर्दे में जान कहां से ग्राई। जल्दी लपेट, ताकि गंगा तट ले चलकर इसका सतगत करें। रात होती जाती है, क्या मुर्दे के साथ हम लोगों को भी मरना है। ठाकुर साहब तो छोड़ ही भागे, ग्रब हमलोगों को इन पचड़ों से क्या मतलब है, किसी तरह फूंक फांक कर घर चलना है। क्या इसके साथ हमें भी जलना है? सत्यसिंह ने कहा भाई, जब नाइन ऐसा कहती है तो देख लेना चाहिये, शायद बहूजी की जान न निकली हो। ठाकुर साहब तो जल्दी से छोड़ भागे, डाक्टर दूरही से देख कर चला गया, ऐसी दशा में ग्रच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिये। सब नैाकरों ने कहा सत्यसिंह तुम तो सठिया गए हो, ऐसा होना ग्रसंभव है। बस, देर न करो, ले चलो। यह कह कर मुर्दे को सीढ़ी पर रख कन्धे पर उठा सत्यसिंह का बचन ग्रसत्य ग्रोर राम नाम सत्य कहते हुए दशाश्वमेध घाट की ग्रोर ले चले। रास्ते में एक नैाकर कहने लगा ७ बज गए हैं, दग्ध करते करते तो १२ बज जावेंगे। दूसरे ने कहा फूकने में निस्सन्देह सारी रात बीत जायगी। तीसरे ने कहा यदि ठाकुर साहब कच्चा ही फेकने को कह गए होते तो ग्रच्छा होता। चैाथे ने कहा मैं तो समझता हूं कि शीतला, हैज़ा, ग्रोर प्लेग से मरे हुए मृतक को कच्चाही बहा देना चाहिये। पांचवे ने कहा यदि पुरोहित जी की राय हो तो ऐसाही कर दिया जाय। पुरोहित जी ने, जिसे रात्रि समय स्मशान में जाते डर मालूम होता था, कहा जब पांच पञ्च की ऐसी राय है तो मेरी भी यही सम्मति है ग्रोर विशेष कर इस कारण कि जब एक बार ठाकुर साहब को नरैनी, ग्रर्थात् पुतला, बनाकर जलाने का कर्म करनाही पड़ैगा तो इस समय दग्ध करना ग्रत्यावश्यक नहीं है। छठवें ग्रोर सातवें नैाकरों ने कहा बस, चल कर मुर्दे को कच्चाही फेंक दो, ठाकुर साहब से कह दिया जायगा कि जला दिया गया। परन्तु सत्यसिंह जो यथा नामः तथा गुणः बहुत सच्चा ग्रोर ईमानदार नैाकर था, कहने लगा मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता, मालिक का कहना ग्रोर मुर्दे की गति करना हमारा धर्म्म है, यदि ग्रापलोग मेरा कहना न मानैं तो मैं यहीं से घर लैाट जाता हूं, ग्रापलोग चाहें जैसा करें ग्रोर चाहे जैसा ठाकुर साहब से कहें; यदि वह मुझसे पूछैंगे तो मैं सच्च सच्च कह दूंगा। यह सुन कर नैाकर घबराए ग्रोर कहने लगे कि भाई इन ३०) में से जो ठाकुर साहब ने दिए हैं, तुम सबसे ग्रधिक हिस्सा लेलो, लेकिन यह वृत्तान्त ठाकुर साहब से मत कहना। सत्यसिंह ने कहा मैं हरामख़ोर नहीं हूं, ऐसा मुझसे कदापि न होगा, लो मैं घर जाता हूं, तुम लोगों के जी में जो ग्रावै सो करना। जब यह कह कर वह बुड्ढा नैाकर चला गया तो बाक़ी नैाकर जी में बहुत डरे ग्रोर पुरो-

हित जी से कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये, बुड्ढा तो सारा भेद खोल देगा और हमलेगों को मौकूफ़ करा देगा। पुरोहित ने कहा तुम लोग कुछ मत डरो, अच्छा हुआ कि बुड्ढा चला गया; अब चाहे जो करो; ठाकुर साहब से मैं कह दूंगा कि मुर्दा जला दिया गया, वह मेरा विश्वास बुड्ढे से भी अधिक करते हैं। ३०) में से ७) तो सीढ़ी और कफन में खर्च हुए हैं, दो दो रुपए तुम सात आदमी लेलो, बाकी ९) मुझे नवग्रह का दान दे दो, मुर्दे को जल में डालकर राम राम कहते हुए कुछ देर रास्ते में बिता कर कोठी पर लौट जाओ, ताकि पड़ोसी लोग समझें कि अवश्य ये लोग मुर्दे को जला आए। यह सुन कर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और २३) आपस में बांटकर मुर्दे को ऐसे अवघट घाट पर ले गए जहां न कोई डोम कफ़न मांगने को था, न कोई महाब्राह्मण दक्षिणा मांगने को। वहां पहुंच कर उन्होंने ऐसी जल्दी की कि सीढ़ी समेत मुर्दे को जल में डाल दिया और राम राम कहते हुए करारे पर चढ़ आए क्योंकि एक तो वहां अंधेरी रात वैसेही भयानक मालूम होती थी, दूसरे वे लोग यह डरते थे कि कहीं सर्कारी चौकीदार आकर गिरफ़्तार न कर ले, क्योंकि सर्कार की तरफ़ से कच्चा मुर्दा फेंकने को मनाही थी। निदान वे बेईमान नौकर इस तरह स्वामी की आज्ञा भंग करके उस अविश्वसनीय पुरोहित के साथ घर लौटे।

अब सुनिए उस मुर्दे की क्या गति हुई। उस सीढ़ी के बांस ऐसे मोटे और हलके थे जैसे नौका के डांड़ और उस स्त्री का शरीर कृशित होकर ऐसा हलका होगया था कि उसके बोझ से वह सीढ़ी पानी में नहीं डूबी और इस तरह उतराती चली गई जैसे बांसों का बेड़ा बहता हुआ चला जाता है। यदि दिन का समय होता तो किनारे पर के लोग अवश्य इस दृश्य से विस्मित होते और कौवे तो ज़रूर कुछ खोद खाद मचाते। परन्तु रात का समय था, इसले वह शव सहित सीढ़ी का बेड़ा धीरे धीरे बहता हुआ त्रिवेणी पार करके प्रायः पांच मील की दूरी पर पहुंचा। पर यह तो कोई अचम्भे की बात न थी। अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना तो यह हुई कि गङ्गाजल की शीतलता उस सोपानस्थित शरीर के लिये, जिसे लोगों ने निर्जीव समझ लिया था, ऐसी उपकारी हुई कि जीव का जो अंश उसमें रह गया था वह जग उठा और बहू जी को कुछ होश आया। परन्तु अपने को इस अद्भुत् दशा में देख वह भैाचक सी रह गई। उनके शरीर का यह हाल था कि प्राणान्तक ज्वराग्नि तो बुझ गई थी, परन्तु गले में की गिल्टी ऐसी पीड़ा दे रही थी कि उसके कारण वह कभी कभी अचेत सी हो जाती थीं। परन्तु जब उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की कृपा होती है तो अनायास प्राणरक्षा के उपाय उपस्थित हो जाते हैं। निदान वह सीढ़ी बहते बहते ऐसी जगह जा पहुंची जहां करौंदे का एक बड़ा भारी पेड़ तट पर खड़ा था और उसकी एक घनी डाली झुक कर जल में स्नान कर रही थी और अपने क्षीरमय फल फूल गङ्गा जी को अर्पण कर रही थी। वह सीढ़ी जाकर उसी डाली से टकराई और उसीमें उलझ कर रुक गई और उस डाली में का एक कांटा बहू जी की गिल्टी में इस तरह चुभ गया जैसे किसी फोड़े में नश्तर। गिल्टी के फूटते ही पीड़ाजनक रुधिर निकल गया, और बहू जी को फिर चेत हुआ। झट उन्होंने अपना मुंह फेर कर देखा तो अपने को उस हरी शाखा की शीतल छाया में ऐसा स्थिर और सुखी पाया जैसे कोई श्रान्त पथिक हिण्डोले पर सोता हो। सूर्योदय का समय था, जल में किनारे की ओर कमल प्रफुल्लित थे और तटस्थ वृक्षों पर पक्षीगण कलरव कर रहे थे। उस अपूर्व शोभा को देख कर बहू जी अपने शरीर की दशा भूल गईं और मन में सोचने लगीं कि क्या मैं स्वर्गलोक में आ गई हूं, वा केवल स्वप्न अवस्था में हूं; और यदि मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं तो भी परमेश्वर मुझे इसी

सुखमय अवस्था में सर्वदा रहने दे। परन्तु इस संसार में सुख तो केवल क्षणिक होता है, "सुख की तो बौछार नहीं है दुख का मेंह बरसता है। यह मुर्दे का गांव रे बाबा. सुख महँगा दुख सस्ता है"। थोड़ी ही देर बाद पक्षीगण उड़ गए और लहरों के उद्वेग से कमलों की शोभा मन्द हो गई। सीढ़ी का हिण्डोला भी अधिक हिलने लगा, जिससे कृशित शरीर को कष्ट होने लगा; बहू जी का जी ऊबने लगा। परन्तु उनका बश क्या था; शरीर में शक्ति नहीं थी कि तैर कर किनारे पर पहुंचें, हालां कि चारही हाथ की दूर पर एक छोटा सा सुन्दर घाट बना हुआ था। वह मन में सोचने लगीं कि शायद मुझको मृतक समझ मेरे पति ने मुझे इस तरह बहा दिया है, परन्तु उनको ऐसी जल्दी नहीं करनी चाहिये थी; मेरे शरीर की अवस्था की जाँच उन्हें भली भांति कर लेनी चाहिये थी; भला उन्होंने मेरा त्याग किया तो किया, उनको बहुत स्त्रियां मिल जायंगी, परन्तु मेरे नादान बच्चे की क्या दशा हुई होगी। अरे, वह मेरे वियोग के दुःख को कैसे सह सकता होगा! हा. वह कहीं रो रो के मरता होगा! उसको मेरे सदृश माता कहां मिल सकती है, विमाता तो उसको और भी दुःखदायिनी होगी। हे परमेश्वर! यदि मैं मृत्युलोक ही में हूं तो मेरे बालक को शान्ति और मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं इस दशा से मुक्त होकर अपने प्राणप्रिय पुत्र से मिलूं। इतना कहते ही एक ऐसी लहर आई कि कई घूण्ट पानी उनके मुख में चला गया। गङ्गाजल के पीते ही शरीर में कुछ शक्ति सी आगई और पुत्र के मिलने की उत्कण्ठा ने उनको ऐसा उत्तेजित किया कि वह हाथों से धीरे धीरे उस सीढ़ीरूपी नौका को खेकर किनारे पर पहुंच गई। अब बांस की सीढ़ी छोड़ हाथों के सहारे से उस घाट की सीढ़ियों पर चढ़ गईं, परन्तु श्रम से मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ीं। कुछ देर बाद जब होश आया तो उस स्थान की रमणीयता देख कर फिर उन्हें यही जान पड़ा कि मैं मरने के पश्चात् स्वर्ग-लोक में आ गई हूं। गङ्गा जी के उज्वल जल का मन्द मन्द प्रवाह आकाशगङ्गा की शोभा दिखाता था और किनारे किनारे के स्थिर जल में फूले हुए कमल ऐसे देख पड़ते थे जैसे आकाश में तारे।

दोहा—गङ्गा के जल गात पै दल जलजात सोहात
जैसे गोरे देह पै नील बस्त्र दरसात ॥

तट पर अम्ब कदम्ब अशोकादि वृक्षों की श्रेणियां दूर तक चली गईं थीं और उनके समीप के उपवन की शोभा "जहां वसन्त ऋतु रही लुभाई" ऐसी मनोहर थी कि मनुष्य का चित्त देखते ही मोहित हो जाता था। कहीं करौंदे कौरैया इन्द्रबेला आदि के वृक्ष अपने फूलों की सुगन्ध से स्थानों को सुबासित कर रहे थे, कहीं बेला चमेली केतकी चम्पा की फूलों से लदी हुई डालियां एक दूसरे से मिली हुई यों देख पड़ती थीं जैसे पुष्पों की माला पहिने हुए सुन्दर बालिकाएं एक से एक हाथ मिलाए खड़ी हों। उनके बीच बीच में ढाक के वृक्ष लाल फूलों से ढके हुए यों देख पड़ते थे जैसे संसारियों के समूह में विरक्त बनवासी खड़े हों। इधर तो इन विरक्तों के रूप ने बहू जी को अपनी वर्त्तमान् दशा की ओर ध्यान दिलाया; उधर कोकिला की कूक ने हृदय में ऐसी हूक पैदा की कि एक बार फिर बहू जी पति के वियोग की व्यथा से व्याकुल होगईं; कहने लगीं कि इस शोक-सागर में डूबने से बेहतर यही होगा कि गङ्गा जी में डूब मरूं। फिर सोचा कि पहिले यह तो मैं बिचार लूं कि मेरा मरना भी सम्भव है या नहीं; यदि मैं स्वर्ग लोक के किसी भाग में आगई हूं तो यहां मृत्यु कैसे आ सकती है। परन्तु यह स्वर्ग लोक नहीं जान पड़ता, क्योंकि स्वर्ग में शारीरिक और मानसिक दुःख नहीं होते, और मैं यहां दोनों से पीड़ित हो रही हूं। इनके अतिरिक्त अब मुझे क्षुधा भी मालूम होती है। बस, निस्संदेह मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मैं मनुष्य ही के शरीर में अब तक हूं और मर कर पिशाची

नहीं होगई हूं, तो मेरा धर्म यही है कि मैं अपने अल्पवयस्क बालक को ढूंढ कर गले से लगाऊं। परन्तु मैं शारीरिक शक्तिहीन अबला इस निर्जन स्थान में किसे पुकारूं, किधर जाऊं! हे करुणामय जगदीश्वर तू ही मेरी सुध ले, यदि तू ने द्रौपदी दमयन्ती आदि अबलाओं की पुकार सुनी है तो मेरी भी सुन। यह कह कर गङ्गा जी की ओर मुंह फेर घाट पर बैठ गईं और जल की शोभा देखने लगीं। इतनेही में दक्षिण दिशा से एक दासी हाथ में घड़ा लिए गङ्गा जल भरने को आई। जब उसने पीछे ही से देखा कि कोई स्त्री कफन का सा श्वेत कपड़ा पहिने अकेली चुपचाप बैठी है, उसके मन में कुछ शंका हुई। जब उसने देखा कि नीचे पानी में एक मुर्दावाली साढ़ी भी तैर रही है तब तो उसे अधिक भय मालूम हुआ और उसने सोचा कि अवश्य कोई मरी हुई स्त्री चुड़ैल होकर बैठी है। जब उसके पांव की आहट पाकर बहूजी ने उसकी ओर मुंह फेरा और गिड़गिड़ा कर उससे कुछ पूछने लगी तो वह उनकी खोड़राई हुई आंखें और अधमरी स्त्री की सी चेष्टा देखकर भय से चिल्ला उठी और चुड़ैल चुड़ैल करके वहीं घड़ा पटक कर भागी। बहूजी ने गला फाड़ फाड़ कर उसे बहुत पुकारा, पर वह न लौटी और अपने ग्राम में ही जाकर उसने दम लिया। जब उसकी भयभीत दशा देखकर और स्त्रियों ने उसका कारण पूछा तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया, परन्तु वह ऐसी डर गई थी कि बार बार घाट ही की ओर देखती थी कि कहीं वह चुड़ैल पीछे पीछे आती न हो। उस समय ग्राम के कुछ मनुष्य खेत काटने चले गए थे और कुछ ठाकुर विभवसिंह के साथ टहलने निकल गए थे। केवल स्त्रियां और लड़के गांव में रह गए थे। उनमें से किसीको यह साहस नहीं होता था कि घाट पर जाकर उस दासी की अपूर्व कथा की जांच करै। चुड़ैल का नाम सुनते ही वे सब ऐसी डर गई थीं कि अपने अपने लड़कों को घर में बन्द करने लगीं कि कहीं चुड़ैल आकर उन्हें चबा न डाले। उस समय ठाकुर साहब का लड़का नवलसिंह भी अपनी मृत माता को स्मरण कर कर नेत्रों से आंसू बहाता हुआ इधर उधर वहीं घूम रहा था और लड़कों के साथ खेलने की उसे इच्छा नहीं होती थी। जब एक स्त्री ने उससे भी कहा कि भैया तुम अपने बँगले में छिप जाओ, नहीं तो वह चुड़ैल आकर तुम्हें पकड़ लेगी, वह आश्चर्यित होकर पूछने लगा कि चुड़ैल कैसी होती है और कहां है। यदि वह यहां आवैगी भी तो मुझे क्यों पकड़ेगी, मैं ने उसको कोई हानि नहीं की है इधर तो यह बातें हो रही थीं, उधर बहूजी निरास होकर फिर मनमें सोचने लगीं कि यह तो निश्चय है कि मैं अभी तक मृत्युलोक ही में हूं; पर क्या वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हुआ है, क्या मैं सच मुच चुड़ैल हो गई हूं जैसा कि वह स्त्री मुझे देखकर कहती हुई भागी है। अवश्य इसमें कुछ भेद है, वरन् मैं इन कृशित अंगों पर कफ़न सा श्वेत वस्त्र लपटाए, काले नागों के से बालों के लट लटकाए हुए इस अज्ञात निर्जन स्थान में कैसे आजाती! हे विधाता मैंने कौन सा पाप किया जो तूने मुझे चुड़ैल का जन्म दिया? क्या पातिव्रत धर्म का यही फल है? अब मैं इस अवस्था में अपने प्यारे पुत्र को को कहां पाऊंगी और यदि पाऊंगी तो कैसे उसे गले लगाऊंगी। वह तो मेरी डरावनी सूरत देखतेही भागेगा। पर जो हो मैं उसे अवश्य तलाश करूंगी और यदि वह मुझसे सप्रेम नहीं मिलैगा तो उसको भी इसी दशा में परिवर्तित करने की चेष्टा करूंगी। यह कह कर वह धीरे धीरे उसी ओर चली जिधर वह दासी भागी थी। दुर्बलता के मारे सारा देह कांपता था, पर क्या करैं क्षुधा के मारे रहा नहीं जाता था। निदान खिसकते खिसकते उपवन डांक कर वह एक वाटिका में पहुंची, जिसमें अमरूद नारङ्गी फालसा लीची सन्तरा इत्यादि के पेड़ लगे हुए थे और क्यारियों में अनेक प्रकार के अंगरेज़ी और हिन्दुस्तानी फूल फूले हुए थे। वाटिका के दक्षिण ओर एक छोटा सा

बँगला बना हुआ था, जिसको देख कर बहू जी ने मन में कहा यह ता वैसाही बँगला मालूम होता है जैसा मेरे इलाक़े पर के बगीचे में बना हुआ है। क्या मैं ईश्वर की कृपा से अपनी ही बाटिका में तो नहीं आ गई हूं ? अरे, यह पुष्पमंडप भी तो वैसाही जान पड़ता है जिसमें तीन वर्ष हुए मैं नवलजो का गोद में लेकर खेलाती थी। मैं जब यहां आई थी तो ग्राम की स्त्रियों से सुना था कि निकटही गङ्गा जी का घाट है। मैंने ठाकुर साहब से वहां स्नान करने की आज्ञा मांगी थी, परन्तु उन्होंने नहीं दी। क्या उसी पाप का तो यह फल नहीं है कि मैं इस दशा का प्राप्त हुई हूं। परन्तु उसमें मेरा क्या दोष था; स्त्री के लिये ता पति की आज्ञा पालन करना ही परम धर्म है। यह फल मेरे किसी और जन्म के पापों का मालूम होता है। इसी तरह मन में अनेक कल्पनाएं करती हुई बहू जी एक नारंगी के पेड़ के नीचे बैठ गईं और लटकी हुई डाल से एक नारंगी तोड़ कर अपनी प्रज्वलित क्षुधाग्नि का बुझाना चाहती थीं कि इतने में नवलसिंह घूमता घूमता उसी स्थान पर आ गया। उसको देखते ही बहूजी की भूख प्यास जाती रही। जैसे मृगी अपने खोए हुए शावक को पाकर उसकी ओर दौड़ती है, वैसे ही बहूजी झपट कर नवलसिंह से लपट गईं और "बेटा नवलजी, बेटा. नवलजी" कहकर उसका मुख चूमने लगीं। उस समय नवलसिंह की अपूर्व दशा थी। कभी ता बहूजी की डरावनी सूरत देखकर भय से भागना चाहता था, कभी माता के मुख की आकृति स्मरण करके प्रेमाश्रु बहाने लगता था और भोलेपन से पूंछता था कि माता तुम मरके फिर जी उठी हो और चुड़ैल हो गई हो! हम लोग ता तुमको घरही पर छोड़ आए थे, तुम अकेली गिरती पड़ती यहां कैसे आगई हो ? बहू जी ने कहा बेटा, मैं नहीं जानती कि मैं कैसे इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मेरा शरीर बदल गया है और मैं चुड़ैल हो गई हूं, ता भी मेरा हृदय पहिले ही का सा है और मैं तुम्हारी ही तलाश में खिसकते खिसकते इधर आई हूं।

इधर ता इस प्रकार प्रेमालिङ्गन और प्रश्नोत्तर हो रहा था, उधर ग्राम्य स्त्रियों ने दुर ही से यह घटना देख कर हाहाकार मचाया और कहने लगीं, अरे, नवल जी को चुड़ैल ने पकड़ लिया! चलिया! दौड़िया! बचाइया! अरे, यह क्या अनर्थ हुआ! हमलोग क्या जानत थीं कि वह डाइन बाटिका में आ बैठी है, नहीं तो नवल जी को क्यों उधर जाने देतीं"। इसी तरह सब दूरही से कोलाहल मचा रही थीं, परन्तु डर के मारे कोई निकट नहीं जाती थी। इतने ही में विभवसिंह और उनके साथ जो गांव के आदमी टहलने गए थे, वापस आगए। यह कोलाहल देख कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दासी के मुंह से सब वृत्तान्त सुन कर ठाकुर साहब ने कहा मुझे प्रेतयोनि में ता विश्वास नहीं है, पर ईश्वर की अद्भुत माया है, शायद सच ही हो। यह कह कर और झट बँगले में से तमञ्चा लेकर वह उसी नारङ्गी के पेड़ की ओर झपटे, जहां नवलसिंह को चुड़ैल पकड़े हुई थी और गांववाले भी लाठी ताने हुए उसी ओर दौड़े। पिता को आते देख लड़के ने चाहा कि अपनी माता के हाथों से अपने को छुड़ाकर और दौड़कर अपने पिता से शुभ सन्देश कहे; लेकिन उसको माता उसे नहीं छोड़ती थी। ठाकुर साहब ने दूर ही से यह हाथापाई देख कर समझा कि अवश्य चुड़ैल उसे ज़ोर से पकड़े है और ललकार कर कहा "बेटा घबड़ाओ मत, मैं आया"। जब पास पहुंचे, उन्होंने चाहा कि चुड़ैल को गोली मार कर गिरा दें, पर लड़के ने चिल्ला के कहा "इन्हें मारो मत, मारो मत, माता हैं, माता हैं"। ठाकुर साहब को उस घबड़ाहट में लड़के की बात समझ में नहीं आई और चूंकि वह पिस्तौल तान चुके थे, उन्होंने फ़ायर कर ही दिया। आवाज़ होते ही बहू जी अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं, और लड़का चौंक कर ज़मीन पर बैठ गया। ठाकुर

साहब ने उसे गोद में उठा लिया और कहा "बेटा डरो मत, अब तुम बच गए, बताओ तो यह कौन है, क्या वास्तव में चुड़ैल है ?" बहू जी को अचेत देख सब आदमी चिल्ला के कहने लगे "चुड़ैल मर गई, चुड़ैल मर गई।" यह सुन कर स्त्रियां भी समीप आईं और चारों ओर खड़ी हो देखने लगीं। उनमें से वह दासी बोली यही दुष्टिन चुड़ैल है जो घाट पर बैठी थी और यहां आ कर नवल जी को निगलना चाहती थी। दूसरी स्त्रियां कहने लगीं हमने तो सुना था कि डाइनों और चुड़ैलों के बड़े बड़े दांत और नख होते हैं, इसके तो वैसे नहीं हैं, यह निगोड़ी किस प्रकार की चुड़ैल है ? एक ने कहा कि यह डाइन की बच्ची है, बढ़ने पर इसके भी दांत बड़े होते।

इधर तो यह ठठोलियां हो रहीं थीं, उधर जब नवलसिंह को निश्चय हुआ कि माता गोली की चोट से मर गईं तो वह शोक के मारे अचेत हो गया। अब सब लोग भयातुर हो कर उसकी ओर देखने लगे। कोई कहता था कि यह पिस्तौल की आवाज़ से डर गया है, कोई कहता था कि इसे चुड़ैल लग गई है। निदान जब वह कुछ होश में आया तो रो रो के कहने लगा, "यह तो मेरी माता हैं, मैंने तो मना किया था, आपने इन्हें गोली से क्यों मारा?" ठाकुर साहब ने कहा तुम्हारी माता तो मर गईं और पुरोहित जी की चिट्ठी कल रात ही को आई कि उनको गङ्गा तट पर ले जाकर जला दिया, यह चुड़ैल तुम्हारी माता कैसे हो सकती है?" लड़के ने कहा "आप समीप जाकर पहिचानिये तो कि यह कौन है"। ठाकुर साहब ने निकट जा ध्यान देकर देखा तो मुख की आकृति उनकी स्त्री ही की सी देख पड़ी और मस्तक पर मस्सा भी वैसाही देखपड़ा। जब छाती पर से कपड़ा हटा कर देखा तो हृदय पर दो तिल भी वैसे ही देख पड़े जैसे बहू जी के थे। तब तो ठाकुर साहब बड़े विस्मित हुए और कहने लगे "क्या आश्चर्य है, यह तो मेरी प्रियपत्नी ही मालूम होती है!" फिर उन्होंने लड़के से कहा "बेटा, तुम सोच मत करो, मैंने इन्हें गोली नहीं मारी है; तुम ने जब मना किया तो मैंने आकाश की ओर यह समझ कर गोली चला दी कि यदि कोई बला होगी तो तमंचे की आवाज़ ही से भाग जायगी"। लड़के ने कहा "देखिए इनके गले में गोली का घाव है, आप कहते हैं कि मैंने गोली नहीं मारी"। ठाकुर साहब ने कहा "यह तो गिल्टी का घाव है, मेरी गोली तो आकाश में तारा हो गई"। इसके अनन्तर ठाकुर साहब ने सब लोगों को वहां से हटा दिया और स्वयं कुछ दूर पर खड़े होकर गांव की नाइन से कहा तुम बहू जी के सब अंगों को अच्छी तरह पहचानती हो। पास जाकर देखो तो कि वह वही हैं, कोई दूसरी स्त्री तो नहीं है। नाइन डरते डरते पास गई और आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगी। इतने में बहूजी को कुछ होश आया और ज्योंही वह उठ के बैठने लगीं त्योंही नाइन भाग कर दूर खड़ी हुई। बहू जी ने उसे पहचान कर कहा अरी बदमियां! मेरा बच्चा कहां गया? नवल जी को जल्द बुला, नहीं तो मेरा प्राण जाता है। ठाकुर साहब तो मेरे प्राण ही के भूखे हैं, प्रयाग जी में मुझे बीमार छोड़ कर भाग आए, जब मैं किसी तरह यहां आई तो मुझपर गोली चलाई, न जाने मुझसे क्या अपराध हुआ है। यदि प्लेग से मर कर मैं चुड़ैल होगई हूं तो इस प्रेत शरीर से भी मैं उनकी सेवा करने को तयार हूं। यदि वह मेरी इस वर्तमान दशा से घृणा करते हैं तो मुझसे भी यह तिरस्कार नहीं सहा जाता, मैं अभी जाकर गङ्गा जी में डूब मरूंगी; पर एक बार मेरे बच्चे को तो बुला दे, मैं उसे गले तो लगा लूं। अरे, उसे छोड़ कर मुझसे कैसे जिया जायगा? हे परमेश्वर, तू यहीं मेरा प्राण ले ले"। यह कह कर वह उच्चस्वर से रोने लगीं। ठाकुर साहब से ये सच्चे प्रेम से भरे हुए वियोग के वचन नहीं सहे गए, उनका हृदय गद्गद होगया, रोमांच हो आया और आंखों से आंसू गिरने लगे।



मोहिनी।

राजा रविवर्म्मा कृत।

झट दौड़ कर उन्होंने बहू जी को उठा लिया और कहा "मेरे अपराध को क्षमा करो, मैंने जान बूझ कर तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया, यदि तुम मेरी पत्नी हो तो चाहे तुम मनुष्य-देह में हो वा प्रेत-शरीर में, तुम हर अवस्था में मुझे ग्राह्य हो। यद्यपि मेरे मन का सँदेह अभी नहीं गया है और इसकी निवृत्ति का यत्न मैं धीरे धीरे करता रहूंगा, पर तुमको मैं अभी से अपनी प्रिय पत्नी मानकर ग्रहण करता हूं। यदि तुम्हारे संसर्ग से मुझे प्लेग पीड़ा वा प्रेतबाधा भी हो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं, मैं अब किसी आपत्ति से नहीं डरूंगा।" यह कह कर वह बहू जी को अपने हाथों का सहारा देकर लताभवन में ले गए और नवल जी को भी वहीं बुलाकर सब वृत्तान्त पूछने लगे।

इतनेही में सत्यसिंह भी शहर से आ गया। जब उसने गांववालों से यह अद्भुत कथा सुन तो वह उसका भेद समझ गया और ठाकुर साहब के सामने जाकर कहने लगा "महाराज! अब आप अपने मन से शंका दूर कीजिए, यह सचमुच बहूजी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जब कल नाइन इनको कफ़नाने लगी थी तो उसने कहा था कि इनका देह गर्म है। मैंने इसकी जांच करने के लिये कहा, पर दुष्ट नौकरों ने न करने दिया और उन्होंने लेजाकर कच्चा ही गङ्गा जी में फेंक दिया। अच्छा हुआ, नहीं तो अब तक जल कर बहुजी की राख हो गई होती। मुझे निश्चय है कि बहू जी की जान नहीं निकली थी, और गङ्गा जी की कृपा से वह बहती बहती इसी घाट पर लगीं और जी उठीं। अब अपना भाग्य सराहिए, इनको फिर से अपनाइए और बधाई बजाइए"।

इतना सुनतेही ठाकुर साहब ने फिर क्षमा मांगी और निशंक हो बहूजी को अंक से लगाया और प्रेमाश्रु बहाए। बहूजी भी प्रेम से विह्वल होकर नवल जी को गोद में लेकर बैठ गईं और उसके कन्धे पर अपना सिर रखकर रोने लगीं। जब गांववालों ने यह वृत्तान्त सुना तो वे आनन्द से फुल उठे और बहूजी के पुनर्जन्म के उत्सव में मृदङ्ग मंजीरा और फाग के डफ बजा कर नाचने गाने लगे, और स्त्रियां सब पान फूल मिठाई लेकर दौड़ीं और बहूजी को देवी मान कर उनका पूजन करने और क्षमा मांगने लगीं। बहूजी ने कहा इसमें तुमलोगों का कोई दोष नहीं, यह मेराही दुर्भाग्य था जिसने ऐसे दिन दिखाए। अब ईश्वर की कृपा से जैसे मेरे दिन लौटे हैं वैसेही सबके लौटें॥

भगवानदास, बी. ए.

श्री स्वामी विवेकानन्द जी

संसार में सर्वदा ईश्वर के कुछ ऐसे प्यारे पुत्र उत्पन्न हुआ करते हैं जो अपने समय की आवश्यकताओं को निहार कर देशहित ही को अपना कर्तव्य समझते हैं। "समय की आवश्यकताएं" तो अनेक हुआ करती हैं, पर एक सच्चे कार्यदक्ष पुरुष का अपने जीवन के आरम्भ में यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी सामर्थ्य और अपनी शक्ति को तौल कर उसको उसी ओर लगाता है कि जिधर वह कृतकार्य हो। किसी महापुरुष की जीवनी पर आलोचना करते हुए इतिहासवेत्ता को इस सिद्धान्त पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। बहुधा लोगों को यह कहते सुनते हैं कि हा! अमुक पुरुष में गुण तो बहुत थे और अमुक अमुक कार्य उसने अच्छे किए, पर उसको चाहिए था कि अमुक सभा वा समाज के उद्देश्यों से भी कुछ अनुराग प्रकट करता। प्रत्येक पुरुष में एक प्रकार की विशेष शक्ति हुआ करती है और इसीके पहिचानने और उसको अपने कर्तव्यों में प्रयोग करने ही को किसी पुरुष के जीवन की सफलता कहते हैं। जो पुरुष अपनी योग्यता को जान कर और उचित अवसर पड़ने पर, उसको देश की सेवा में लगा देता है, वही पुरुष संसार में आदर्श होकर अमर हो जाता

है। परन्तु जो कुछ योग्यता हम अपने में पावें उस को दिखाने में स्वार्थ, अहङ्कार इत्यादि का लेश भी न होना चाहिए और यही सच्चे देशहितैषी की कसौटी है। यदि हम में वक्तृता देने की उत्तम शक्ति है तो हम उसको व्यर्थ विवाद अथवा शास्त्रार्थ में इस हेतु न नष्ट करें कि हमारे विरोधी अथवा श्रोतागण हमारी विद्या बुद्धि से चकित हो जांय, अथवा इस शक्ति से हमारा उदर पूर्ण हो। जिस सभा अथवा समाज का हम बोड़ा उठावें वह भले लोगों में चाहे बदनाम ही क्यों न हो जाय, पर हम अपनी वक्तृताशक्ति से अपना पेट तो भर लें। इस उद्देश्य से काम करना न केवल नीचता है, परन्तु ईश्वर की दी हुई शक्ति को—कि जिसके प्राप्त करने में हमने बहुत परिश्रम नहीं किया—अधर्म में लगाना है। सारांश यह कि हम सब में एक विशेष शारीरिक अथवा मानसिक बल ईश्वर की ओर से मिला हुआ है, उसको ऐसे समय में काम में लाओ कि जब उससे देश की सेवा निःस्वार्थ और निष्कपट होकर की जा सके और महान पुरुष वही है जो ऐसा करता है।

भारतवर्ष में जब अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और हिन्दू युवकों ने जब अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान और इसके साथ ही अंग्रेज़ों के चरित्र से विज्ञता प्राप्त की, तो उनकी बुद्धि कुछ चक्कर में आ गई। घर में आकर देखते थे कि सब में देश-हितैषिता का अभाव है, विद्या से अनुराग नहीं, स्त्रियों का उचित सम्मान नहीं, धर्म पर लोग विचार नहीं करते, धर्म्म के आचार्यों के चरित्र उनके यजमानों से भी अधम हैं, मुफ़्त के खानेवालों की संख्या अधिक है और उन्हींका आदर किया जाता है, एक पुरुष कई विवाह कर लेता है और 'कुलीन' कहलाता है। ऐसे समय में इन हिन्दू युवकों ने, जिनके चित्त से अंग्रेजी की ज्योति पुराने अन्धकार को निकाल रही थी, भूल से यह समझा कि यही हिन्दूधर्म है और इसका छोड़ना आत्मोन्नति और देशोन्नति का लक्षण है। ऐसे समय में राजा राममोहन राय पैदा हुए और उन्होंने अपने अलौकिक गुणों को इसी बात के सिद्ध करने में लगाया कि उस समय की वर्तमान सामाजिक अवस्था यथार्थ वैदिक और शास्त्रोक्त हिन्दूधर्म से बिलकुल भिन्न है और इसी उद्देश्य को, जिसको राजा राममोहन राय ने आरम्भ किया, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यन्त परिश्रम, बुद्धिमत्ता और देशहितैषिता से पूर्ण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं के चित्त में प्राचीन आर्य ग्रन्थों और आर्य सभ्यता में पूर्ण विश्वास हो गया और वे लोग भली भांति जान गए कि धर्म में हमको विदेशियों का अनुकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन महात्माओं का विदेशियों के उन झूठे विचारों को दूर करने में कुछ भी असर न हुआ कि जो वे लोग हिन्दूधर्म और सभ्यता के सम्बन्ध में प्रकट करते थे! हिन्दुओं का ईसाई होना तो कम हो गया, परन्तु विलायत में जा कर पादड़ियों का हिन्दुस्तान की कल्पित दुर्दशा के चित्रों को दिखा कर रुपया लाना बन्द न हुआ। कोई विद्वान पादड़ी तालाबों की तस्वीरें बाजारों में दिखलाता कि जिनमें मगर अपना मुंह बाहर निकाल कर उन असभ्य हिन्दुओं की ओर देख रहे हैं कि जो किनारे पर खड़े होकर अपनी लड़कियों को उस तालाब में फेंका ही चाहते हैं। कोई सती की दुर्दशा दिखलाता, कोई ग्रहणस्नान करने की मूर्खता का चित्र सामने रख इन असभ्यों में (कोई कोई महाशय यह भी कह देते थे कि हिन्दू नर-मांसभक्षक हैं) ईसाई धर्म का प्रचार करने के हेतु दान देने की अपील करता। इसका राजनैतिक परिणाम यह होने लगा कि जितने अंग्रेज़ भारत में हमारे शासक होकर आते, वे यह समझ लेते कि हमें असभ्यों पर राज्य करना है और इनसे वैसा ही बर्ताव किया जाय कि जैसा अमेरिका के रेड इण्डियन्स से किया गया था। स्वयम् लार्ड जोर्ज हेमिल्टन ने, जो भारत के राजकीय मन्त्री हैं, एक समय में कहा था कि भारतवासी जङ्गली

हैं। हमारे शासकों में ऐसा विचार होना हमारे लिये कैसा हानिकारक है उसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी अवस्था में इस बात की आवश्यकता थी कि यूरोप और अमेरिका-निवासियों पर अपने यथार्थ बल अर्थात् धर्म्म को प्रकट करें। इसपर पुस्तकें लिखने से कोई लाभ न था। इसके लिये आवश्यक था कि किसी सुअवसर पर हम में से कोई योग्य पुरुष स्वयम् विदेश जाता और हमारे धर्म की यथार्थ मर्यादा हमारे शासकों की जाति पर मनोहर रूप से प्रकट करता। आज हम जिस पुरुष का जीवनचरित्र लिखते हैं, उसने हमारी ऐसी ही अवस्था में हमारा उद्धार किया। हम कृतघ्नो चाहे जो कुछ कहें, पर उनके उपदेशों का जो प्रभाव हुआ है उसको स्वयम् विदेशियों ने स्वीकार किया है और अभी थोड़े ही दिन हुए कि उन्हीं लोर्ड जार्ज हेमिल्टन ने कूपर्स हिल कोलेज में व्याख्यान देते हुए कहा था कि हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता और हमारी नवीन सभ्यता में समता नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि उक्त लोर्ड महोदय के विचार को स्वामी जी ने सुधारा, पर हमारा तात्पर्य यह है कि एक ऐसे पदाधिकारी का, जो अपने वाक्यों को बहुत समझ सोच कर निकालते हैं, उनके जीवनकाल ही में मत परिवर्तन स्पष्ट जातीय मत परिवर्तन की सूचना देता है।

संक्षिप्त जीवनी

स्वामी जी का जन्म बङ्गाल में हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व इनका नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। यह जाति के कायस्थ थे। इनके पिता एक वकील के मोहर्रिर थे। पिता ने अपने पुत्र को संस्कृत और अङ्ग्रेज़ी की शिक्षा दी और नरेन्द्रनाथ ने बी० ए० तक पढ़ा। पिता की इच्छा थी कि पुत्र को वकील बनावे, और बालक नरेन्द्र नाथ को संस्कृत और फिलासोफ़ी (दर्शन शास्त्र) पढ़ने की बड़ी अभिलाषा और धर्मों के तत्व को जानने की जिज्ञासा थी। इस समय बङ्गाल में एक महात्मा संन्यासी रहते थे, जिनका नाम परमहंस रामकृष्ण था। इनके उपदेशों और सद्गुणों में ऐसी विद्युत् शक्ति थी कि उस समय के बड़े बड़े विद्वानों ने, जो नास्तिक हो गए थे, इनके सत्संग से ईश्वर में विश्वास किया। कहा जाता है कि विख्यात ब्राह्म उपदेशक बाबू केशव चन्द्र सेन भी "हरि बोल" कहने वाले दल के साथ परमहंस जी के प्रभाव से नृत्य करने लग गए थे और उन्होंने मूर्तिपूजा पर अपना मत भी कुछ बदल दिया था। जो कुछ हो, युवक नरेन्द्रनाथ की धर्म-पिपासा उन्हें परमहंस के उपदेशों के स्रोत की ओर ले गई और उन्हें योगी परमहंस से पूरा सन्तोष प्राप्त हुआ। परमहंस जी स्वयम् कहा करते थे कि मेरे शिष्यों में नरेन्द्रनाथ सुहृद् और विद्वान होगा और संसार में विख्याति प्राप्त करेगा। नरेन्द्रनाथ उस समय संन्यासी हो गए और स्वामी रामकृष्ण ने इनका नाम विवेकानन्द रक्खा। उसी समय से इन्होंने संस्कृत पढ़ने में और भी परिश्रम करना आरम्भ किया। ये कई वर्ष लों काशी में रहे। हमारे परिचित कई पुरुषों ने विवेकानन्द के विलायत से आने पर हमसे कहा कि वे स्वामी जी को उस समय जानते थे कि जब वे काशी जी में पढ़ते थे और उस समय वे ऐसे दत्तचित्त होकर पढ़ते थे कि बहुत से लोग तो कभी यह भी सन्देह नहीं कर सकते थे कि यह अङ्गरेज़ी जानते हैं। निदान स्वामी जी भ्रमण करते हुए और संस्कृत की व्युत्पत्ति बढ़ाते हुए हिमालय के गुप्त और रमणीक स्थानों में पहुंचे और उन्होंने वहां योगाभ्यास भी किया।

वेदान्त प्रचार का आरम्भ

इसी समय में पत्रों में समाचार छपने लगा कि अमेरिकान्तर्गत शिकागो नगर में एक बृहत प्रदर्शनी होगी और उसके साथ ही धर्म की एक महासभा भी होगी, जिसमें पधारने के लिये

संसार के सब धर्मों के आचार्य निमन्त्रित किए जायँगे। प्रत्येक धर्म्म के प्रतिनिधि अपने धर्म्म की व्याख्या करेंगे जो छप जायगी और जिसपर पाठक गण स्वयम् विचार करलेंगे। काशी में विख्यात स्वामी भास्करानन्द जी को भी निमन्त्रण आया था, पर नवयुवक विवेकानन्द को जानता ही कौन था कि निमन्त्रण आता। पर देशहितैषिता को आग को लौकिक संकोच और सामाजिक विडम्बना भी नहीं बुझा सका। स्वामी विवेकानन्द मन्द्राज पहुंचे और वहां राजा रामनाद से अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि द्रव्य से सहायता मिले तो मैं भी धर्ममहासभा में जाऊं। उदार राजा ने सब प्रबन्ध कर दिया और हमारे नायक अनजाने और अनजान अमेरिका में जा पहुंचे। इनको पहुंचने में कुछ विलम्ब हो गया था और कहा जाता है कि ब्राह्म और थियासोफ़िस्ट प्रतिनिधियों ने विवेकानन्द जी के महासभा में सम्मिलित होने का बड़ा विरोध किया था परन्तु इस कथन की सत्यता वा असत्यता के हम उत्तरदाता नहीं हैं। बहुत यत्न करने पर स्वामी जी को भी व्याख्यान देने की आज्ञा मिली।

अमेरिका में स्वामी जी

अमेरिका की धर्ममहासभा का व्याख्यान बहुत सारगर्भित और मनोहर है। उसपर बहुत से पादड़ियों और विदेशी विद्वानों ने यह कहा था कि यदि यही हिन्दू धर्म है जिसकी व्याख्या स्वामी जी ने की, तो इस पर ईसाई धर्म का कुछ भी असर नहीं हो सकता। परन्तु हिन्दुस्तान के बहुत से पादड़ियों और योरोपियन समाचार पत्रों के सम्पादकों ने यह लिखा था कि हमलोग नित्य हिन्दूधर्म को देखते हैं और हम कह सकते हैं कि सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म स्वामीजी के बताए धर्म से उतना ही भिन्न और पृथक है कि जितना कोई और विदेशी मत। इस पर स्वामी जी ने अमेरिका ही में Popular Hinduism अर्थात् "सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म" पर व्याख्यान दिया। स्वामी जी के व्याख्यान इतने रोचक होते थे कि हज़ारों अमेरिकन पुरुष और स्त्रियां उनका व्याख्यान सुनने आते, सैकड़ों अखबारों के प्रतिनिधि उनसे मिलने और उनसे धर्मचर्चा करने के हेतु जाते। इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि अमेरिका की धर्ममहासभा में इनसे अधिक प्रतिष्ठा और आदर किसी धर्म के प्रतिनिधि का नहीं हुआ।

वहां से चल कर स्वामी जी इङ्गलैण्ड होते हुए, कि जहां उन्होंने बहुत से व्याख्यान दिए, भारतवर्ष को लौट आए। यहां आने पर सीलोन और मन्द्राज में उनका बड़ा आदर सत्कार हुआ और फिर जहां जहां वे गए, लोग उनका स्वागत करते रहे। अमेरिका और विलायत में उन्होंने बहुत सा रुपया भी जमा किया था। उनकी इच्छा थी कि भारतवर्ष के मुख्य मुख्य स्थानों में मठ स्थापित हों कि जहां से साधु शिक्षा पाकर उपदेशक बनें। उन्होंने अपने जमा किए हुए रुपए से दो एक मठ स्थापित भी किए, परन्तु अपने विचार को वह पूरा न कर सके। भारतवर्ष में आने के कुछ काल पीछे वह रुग्न हो गए और उस समय से बराबर रोगग्रस्त रहे। तिस पर भी सदैव देश की सेवा का ध्यान उनके चित्त पर बँधा रहता। जो कोई उनके दर्शनों को जाता उससे यही चर्चा रहती। एक बार वे पुनः विलायत इस हेतु से गए कि फ़ान्स देश में यदि प्रदर्शनी के साथ धर्ममहासभा होगी, कि जिसके होने की बड़ी सम्भावना थी, तो वहां हिन्दूधर्म का गौरव फ़ान्सीसी भाषा में वहां के लोगों पर प्रकट करें। उन्होंने फ्रेञ्च भाषा में भी अच्छी उन्नति करली थी।

विवेकानन्द और थियोसोफ़िस्ट

हिन्दी पढ़नेवाले "थियोसोफ़ी" से शायद अनभिज्ञ हों, पर वे इस सभा की वर्तमान नायिका एनी बेसेण्ट के नाम से अवश्य परिचित होंगे।

इस सभा के संस्थापक और सभापति कर्नल आलकट हैं। कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द अमेरिका जाने के पहिले मन्द्राज में कर्नल आलकट से, जिनका जन्मस्थान अमेरिका है, मिलने गए और उनसे उनके उत्साही मित्रों के नाम कुछ पत्र मांगे। परन्तु कर्नल महोदय ने इनसे थियोसोफ़िस्ट हो जाने का अनुरोध किया। स्वामी जी ने कहा कि मुझे बहुत सी बातों पर सन्देह है, मैं थियोसोफ़िस्ट न हूंगा; जिसपर कर्नल महोदय ने क्रुद्ध होकर स्वामी जी से चले जाने को कहा। इस बात को स्वामी जी ने स्वयं मन्द्राज को स्पीच में कहा है। स्वामी जी का मतभेद थियोसोफ़िकल सोसाइटी से "महात्माओं के अस्तित्व" पर ही विशेष था। थियोसोफ़िकल सोसाइटी के अधिकांश मेम्बरों का विश्वास है कि हिमालय पर्वत के किसी दुर्गम स्थान पर महात्मागण रहते हैं जो सोसायटी पर अति कृपा रखते हैं। एक का नाम "कुतुहूमी लाल सिंह" है। यह विशेष विशेष लोगों से पत्र व्यवहार भी रखते हैं और कभी कभी सूक्ष्मरूप से अमेरिका और इङ्गलैण्ड जाकर लोगों को दर्शन भी दे आते हैं। स्वयम् कर्नल आलकट से विलायत और अमेरिका में महात्मागण कभी पगड़ी अङ्गरखा पहिन कर और कभी किसी दूसरे वेष में मिल आते हैं। किसी किसी थियोसोफ़िस्ट का तो यहां तक दृढ़ विश्वास है कि वे लोग जब कोई शुभकार्य आरम्भ करेंगे, या किसी अपौरुषेय शक्ति का आवाहन करेंगे तो "महात्माओं" (Masters) का आशीर्वाद पहिले प्राप्त कर लेंगे। जब तक मेडम ब्लैवट्स्की जीवित थीं, तब तक महात्माओं की सहायता से कर्नल साहब और उक्त लेडी साहिबा विचित्र विचित्र बातें किया करते थे—यथा रोगियों को चङ्गा करना, टेबुल से पत्र व्यवहार करना इत्यादि। सोसाइटी के लोगों में किसी किसी का यह भी विश्वास है कि हिन्दुओं के वर्तमान वेद असली वेद नहीं हैं। असली वेद महात्माओं के पास हैं जो उचित समय पर उनको प्रकट करेंगे। स्वामी विवेकानन्द को ऐसे महात्माओं की स्थिति में विश्वास नहीं था। वे मानते थे कि हिमालय पर योगीजन निवास करते हैं। अमेरिका से जो उत्तर उन्होंने मन्द्राज के हिन्दुओं के प्रशंसापत्र पर भेजा था, उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हिमालय पर योगीजन रहते हैं। वे परोपकारी, पण्डित और बहुत ही उच्चश्रेणी के मनुष्य हैं; परन्तु उन्हें महात्मा कुतुहूमी लाल सिंह का विचित्र वृत्तान्त एक रोचक उपन्यास, जो भोले भाले हिन्दुओं के लिये रचा गया हो, मलूम होता था। जो हो परन्तु हमारा स्वयम् यह विश्वास है कि उक्त सोसायटी ने संस्कृत के उद्धार करने और हिन्दुओं को इसाई होने से रोकने में भारतवर्ष की सच्ची सेवा की है। परन्तु इसके साथही हिन्दुओं के मिथ्या विश्वासों को वैज्ञानिक रूप देकर हिन्दुओं की सच्ची उन्नति को भी बहुत कुछ रोका है! किम्वदन्ती है कि हिन्दू कोलेज की ओर से स्वामी जी को एक पत्र भेजा गया था कि वे हिन्दू कालेज के लिये चन्दा एकट्ठा करने में सहायता दें, परन्तु उन्होंने इसे इस कारण स्वीकार नहीं किया कि हिन्दू कालेज में थियोसोफ़ी की शिक्षा होगी। हमें इस कथा में केवल इसी लिये विश्वास होता है कि हिन्दू कालेज के हेतु काम करनेवाले लोगों में अच्छे वक्तागण केवल योरोपियन ही हैं। लोगों को यह कहते सुना है कि कालेज के चन्दे की अपील केवल मिसेज़ बेसन्ट ही करती हैं। दूसरे हिन्दू मेम्बर (जिनका यह मुख्य कर्तव्य है) चुप चाप बैठे रहते हैं। शायद इस दोष को दूर करने के हेतु स्वामी विवेकानन्द से प्रार्थना की गई हो।

विवेकानन्द का मत

विवेकानन्द का मत वेदान्त था। अपने मत की व्याख्या करते हुए वे नवीन विज्ञान शास्त्रों से बड़ी सहायता लेते थे, और यही उनके यश का

कारण हुआ। आज कल के बहुत से उपदेशक जिन्होंने डारविन, हक्सले, या टिण्डल की एक भी पुस्तक नहीं देखी, व्याख्यान का आरम्भ इन्हीं पर गालियों की बौछार से करते हैं। जिन जिन विषयों पर स्वामी जी को विश्वास था उनके मण्डन करने में वे अपने विश्वास को विज्ञानशास्त्र के अटल सिद्धान्तों के अनुकूल दिखलाने का प्रयत्न करते और उसमें सफलीभूत भी हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द समाजसंशोधक भी थे। खाने पीने में वे धर्म नहीं समझते थे। आज कल के दिखौआ आडम्बरों को वह सोने की मैल समझते थे। मूर्ति-पूजा में उन्हें विश्वास था, परन्तु आज कल के पण्डों और धर्माचार्यों का वे सुधार चाहते थे। विदेशयात्रा के वे पक्षपाती थे और इसी कारण वे हिन्दुओं में मांस का प्रचार करते थे (हम इसको स्वामी जी की भूल समझते हैं) और स्वयम् भी मांस खाते थे। परन्तु ऐसा उन्होंने डाक्टरों के अनुरोध से किया; नहीं तो उनका जीना कठिन था। योगियों और आत्मिक उन्नति करनेवालों को वे मांस का निषेध करते थे।

स्वामी विवेकानन्द देवनागरी अक्षरों के बड़े प्रेमी थे। वे अपने बङ्गाली मित्रों से कहा करते थे कि बङ्गला भाषा भी देवनागरी अक्षरों में लिखनी चाहिए। उन्होंने स्वयम् कई पत्र ऐसेही लिखे थे। हिन्दी वह बहुत अच्छी तरह से बोलते थे।

हमारे पाठकों पर शायद विदित है कि जापान में भी इस वर्ष धर्म महासभा होगी, जिसमें हिन्दू-धर्म के प्रतिनिधियों के हेतु जापानी लोगों ने जहाज और खाने पीने का विशेष प्रवन्ध कर दिया है। इस महासभा में स्वामी जी को भी निमंत्रण आया था, और उन्होंने जाना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु ईश्वर को विवेकानन्द को पाश्चात्य नगरों के ही उपदेशक होने का गौरव देना था, और यह यश उन्हें उचित समय में और उचित रूप से मिला। उनके दो शिष्य इस समय वेदान्त प्रचार में बहुत दत्तचित्त हैं—स्वामी अभ्रानन्द और स्वामी सारदानन्द। कई एक मेम और साहब भी इनके अनुगामी हैं। गत वर्ष जब कलकत्ते में प्लेग और अकाल पड़ा था, तो स्वामी विवेकानन्द और उनके उक्त शिष्यों ने चन्दा जमा करके स्थान स्थान पर चिकित्सालय और अनाथालय खोले थे। सहस्रों रोगियों और कङ्गालों की सेवा ये लोग स्वयम् प्रेमपूर्वक किया करते थे। धन्य हैं ऐसे लोग!

स्वामी जी की मृत्यु

ऐसे पुरुष का मनुष्य की पूरी अवधि तक जीते रहना देश और संसार के लिये बड़े उपकार की बात थी। परन्तु स्वामी जी का देहान्त ४ जुलाई १९०२ को ३९ वर्ष की अवस्था में होगया। उनकी मृत्यु योगियों की सी हुई। उन्हें अपनी मृत्यु का आभास पूर्वही से होगया था, उन्होंने बातचीत करते हुए शरीर त्यागा और वह शरीर जिसकी मधुर वाणी सुनने और जिसका सुन्दर रूप देखने को अमेरिका के निवासी सभाओं में एकत्रित होते, आज मैान हो गया। भारतवासियो, अभी तुम्हारे भाग्य मन्द हैं। भारत ने इसी शताब्दी में विवेकानन्द से भी बढ़े हुए लोग उत्पन्न किए, परन्तु वे सब ऐसे ही समय में हमसे छीन लिए गए कि जब द्वार खटखटाने से सोनेवालों की नींद हो खुली थी। मन्द्राज प्रदेश में स्वामी के मरने पर एक सभा शोक प्रकाश करने के हेतु हुई थी, और इसमें लोगोंने एक मठ स्थापित करने के लिये चन्दा भी जमा किया है, जिससे वेदान्त का प्रचार विदेश में होता रहे। सनातन धर्मावलम्बियो, जो आपका कर्तव्य है उसको या तो विदेशी लोग कर रहे हैं या ऐसे लोग जिन्हें आप गाली देते हैं। तनिक विचारिए कि आपने अब तक क्या किया!

रामनारायण मिश्र

——

राजर्षि भीष्मपितामह जी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

महाभारत का भयङ्कर युद्ध

पाठकगण! अब मैं आपको उस भयङ्कर युद्ध का वृत्तान्त सुनाता हूं जिसके परिणाम ने आर्य्यावर्त का सर्वस्व नाश कर दिया, संसार में जिसने अविद्या का घटाटोप अंधकार कर दिया, जगत में जिसके कारण विद्वानों का प्रभाव हुआ और जिसने संसार का रङ्ग बदल दिया। आप आश्चर्य्य करेंगे कि एक देश के युद्ध ने संसार में परिवर्तन कैसे कर दिया! आश्चर्य्य की बात नहीं। यदि आपको प्राचीन इतिहास के देखने का शौक है और आप संसार भर की प्राचीन जातियों के वृत्तान्त की जिज्ञासा करें तो आपको पता लगजाय कि संसार में इस युद्ध ने क्या परिवर्तन किया। महाभारत के युद्ध तक आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य था और वैदिक धर्म का प्रचार सारे संसार में था, क्योंकि युधिष्ठिर के यज्ञ में सब देशों के राजा एकत्रित हुए थे, और संस्कृत वाणी प्रत्येक देश में प्रचलित थी। यह सब वृत्तान्त महाभारत के पढ़ने से विदित होता है। महाभारत के इतिहास को एक तरफ रखकर आधुनिक सभ्य जातियों के तलाश किए हुए इतिहास को ध्यान पूर्वक पढ़ जाइए, सब अपने बड़ों को आर्यों से उत्पन्न हुआ मानते हैं और आपने आप को पहिले असभ्य मान कर फिर उन्नति करना बतलाते हैं। परन्तु समय असभ्यता का जो वे नियत करते हैं, वह इस युद्ध से सैकड़ों वर्षों पीछे का है और धर्म जितने प्रचलित बतलाते हैं सबका भाण्डार पारसियों के धर्म को बतलाते हैं। परन्तु उन्हीं पारसियों के पैग़म्बर जरदुश्त ने जन्दावस्था में आर्य्यों की बड़ी प्रशंसा की है और भारत के ब्राह्मणों के वैदिक सिद्धान्तों के आगे सिर झुकाया है। मैक्समूलर ने, जो भाषातत्व की जिज्ञासा करनेवालों के शिरोमणि समझे गए हैं संस्कृत वाणी को सब ज़बानों की जड़ माना है और दुनिया भर की ज़बानों को इससे निकला बतलाया है। परन्तु इसका समय जो उसने नियत किया है, वह भी महाभारत के बाद का है। पक्षपातरहित होकर यदि हम विचार करें तो परिणाम यही निकलता है कि इस युद्ध के बाद प्रत्येक देश में पृथक पृथक राज्य बने और विद्वानों के अभाव से उनमें असभ्यता फैली; क्योंकि आपस में मिलना, देश देशान्तर में जाना आना छुट गया। इसलिये जिसने जैसा चाहा धर्म चलाया। और जितने धर्म हैं सबों की सत्यता वेदों से ली हुई प्रतीत होती है, क्योंकि सबसे प्राचीन पारसियों के गुरु ने आप आर्य्यावर्त के ब्राह्मणों से सिद्धान्त सीखे और जितनी बोलियां आज कल प्रचलित हैं सब संस्कृत से किसी न किसी तरह बिगड़ कर इस अवस्था को प्राप्त हो गई हैं और उनके शब्द साफ संस्कृत शब्दों से मिलते हैं। असभ्यता से उन्नति करती हुई युरोपजाति के भूषण गेलिलिओ ने मालूम किया कि पृथ्वी गोल है और आर्यावर्त के विद्वान इस विद्या को ही भूगोलविद्या कहते हैं। सारांश यह कि जितना परिवर्तन संसार में हुआ, इस युद्ध के बाद ही हुआ है। इस जीवनी में मैं इस विषय पर पूर्णतया लिख नहीं सकता। यदि ईश्वर ने चाहा और अवसर मिला तो इस विषय को बहुत साफ करके कभी आप लोगों के सामने धरूंगा।

जब कृष्ण जी निराश हो लौट कर पांडवों के पास चले गए और भीष्म जी का सारा उपदेश, जो उन्होंने दुर्य्योधन को दिया था, निष्फल गया, तो दोनों ओर से युद्ध के सामान होने लगे। बहुत से राजा पांडवों के सहायक हो गए और उन्होंने अपनी सेना सहायतार्थ पांचाल देश में, जहां पांडव ठहर रहे थे भेज दी। पांडवों के पास ७ अक्षौहिणी सेना एकत्रित हो गई और सारी सेना धृष्टद्युम्न के, जो पांचाल देश के राजा द्रुपद का ज्येष्ठ पुत्र था, अधिकार में रक्खी गई

और वही उसके नायक बनाए गए। कौरवों ने बहुत शीघ्रता से अपने दूत भेज बहुत से राजाओं को अपनी ओर कर लिया और उनके पास ११ अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गई। प्रत्येक देश के राजा इस युद्ध में शामिल हुए थे। बड़े बड़े विद्वान् वेदवेत्ता ब्राह्मण भी, जो युद्धविद्या में निपुण थे, इस युद्ध में कौरवों के सहायतार्थ आ गए। कौरवों की सेना के नायक भीष्म पितामह जी बनाए गए और सारी सेना का अधिकार इनको सौंपा गया। यद्यपि कर्ण ने, जो सदा इनके विरुद्ध रहता था, विरोध किया, परन्तु सर्वसम्मति से पितामह जी नायक बनाए गए और कर्ण रुष्ट हो चला गया।

युधिष्ठिर की आज्ञा से धृष्टद्युम्न अपनी सेना को रणभूमि में ले चले और भीष्म जी ने भी अपने राजा की आज्ञा से सारी सेना को युद्ध के लिये सुसज्जित कर कूच की आज्ञा दी। दोनों दलों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध अखाड़े में आ जमीं, और उन्होंने एक दूसरे के सम्मुख डेरे डाल दिए। यह वह भूमि है जिसको अब थानेश्वर कहते हैं। इस भूमि में जब जब आर्य्य जाति युद्ध के लिये इकट्ठी हुई है, इसका सर्वनाश हुआ है। सबसे पहिले महाभारत का युद्ध हुआ, जिससे आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती राज्य नष्ट हुआ। इसके पीछे जब यवनों ने इस पवित्र भूमि को पदाक्रांत करना आरम्भ किया, और अरब के रेगिस्तान से तङ्ग आकर वे बनी बनाई स्वर्गसमान आर्यभूमि में अपने राज्य को दृढ़ करने के विचार से शहाबुद्दीन गोरी को नायक बना यहां पर आकर अपना अधिकार जमाने लगे थे, तो आर्य राजा पृथ्वीराज चौहान अपने वीर राजपूतों को संग लेकर उस दुष्ट का मुखमर्दन करने के लिये इसी भूमि में आडटा था। परन्तु वही घर की फूट, जिसने पहिले सर्वनाश किया था, उसीने भारत का रहा सहा गौरव इस बेर भी नष्ट कर दिया और यवनों का राज्य इस देश में दृढ़ हो गया। मुहम्मदी ध्वजा प्रत्येक स्थान पर फहराने लगी। क्यों न हो, इस फूट का स्वाभाविक फल ही यही है। पांच शताब्दी पीछे जब फिर आर्य्यावर्त्त के भाग्य उदय हुए और राजपूत कुलोत्पन्न महाराज शिवाजी आर्य्य जाति को पुनर्जीवित कर, इस पर अपना राज्य स्थापित करके आप चिरस्थायी कीर्ति प्राप्त कर स्वर्गधाम को सिधारे, तो उनके पीछे सारे भारत में वेदों की माननेवाली जाति ही अस्त्र शस्त्र से भूषित स्वतन्त्रता के सुख सहित विचरती थी। परन्तु हाय फूट, तू ने अब भी पीछा न छोड़ा और इस स्वतन्त्रता को स्वप्नवत् कर दिया। अहमदशाह अबदाली के साथ इसी कुरुक्षेत्र की भूमि में युद्ध हुआ था, जिसने आर्य्यों की भविष्यत् आशाओं पर पानी फेर दिया। हाय!

कर्मगति टारी न टरै

यह कह कर इस भूमि के वर्णन को छोड़ अपने विषय पर चलते हैं। जब दोनों ओर से सेनाएं युद्ध के लिये तय्यार थीं, वीरों ने शस्त्र निकाल लिये थे, दोनों दलों में क्षत्री हर्ष से शङ्ख बजाने लगे थे, जिन की ध्वनि से आकाश गूँज उठा था,—उस समय धृष्टद्युम्न ने अचल व्यूह रच अपनी सेना को अपने कर्तव्य के पालन करने का उपदेश दिया। भीष्म जी इस समय श्वेत घोड़े पर सवार श्वेत वस्त्र पहिने और श्वेत खड्ग धारण किए अपने योद्धाओं के उत्साह को बढ़ा रहे थे। पितामह जी की श्वेत दाढ़ी योद्धाओं को अपने धर्मपालन की ओर प्रवृत्त कर रही थी। भीष्म जी ने भी अपनी सेना को वीरता बढ़ाने के लिये उन्हें क्षात्रधर्म का उपदेश दिया। जब दोनों दलों के वीर युद्ध के लिये उद्यत हो उत्सुक चित्त से केवल अपने नायकों की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस समय पाण्डवदल के राजा युधिष्ठिर अपने रथ से उतर शस्त्र रख नँगे पांवों कौरवदल की ओर चल पड़े। सब लोग आश्चर्य्यान्वित हो उनकी ओर देखने लगे। शत्रु उनके रक्त के पियासे खड्गों को चमकाते हुए

सम्मुख खड़े हैं और यह उनकी ओर नङ्गे पांवों शस्त्र रहित जा रहे हैं। लोगों ने समझा युधिष्ठिर भयभीत हो युद्ध से डर कर भागना चाहते हैं। कोई बोला कायर हैं! क्षमाप्रार्थी होने के लिये कुरुदल में जाते हैं। अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव चारों भाइयों ने कारण पूछा। युधिष्ठिर मौन साधे हुए कुरुदल की ओर बढ़ते गए। उनकी बात का उत्तर तक न दिया। आखिर वे भीष्म जी के पास पहुंचे और उनके पांव पर शिर रख फिर हाथ जोड़ अभिवादन कर बोले—

"हे दुर्द्धर्ष! हमको आप से युद्ध करना है, युद्ध की आज्ञा दीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि हमें जयलाभ हो।

भीष्म—मैं तुम्हारे आने से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। बेटा! युद्ध करो, तुम्हें अवश्य जय प्राप्त होगी और जिस बात की तुम्हें इच्छा हो वह कहो। युद्ध में तुम्हारी ही जीत होगी। मैं कौरवों का सेवक इसलिये हूं कि मैंने उनका नमक खाया है, धन से बद्ध हूं। सत्य जानिए, मैं धन से बद्ध हो कौरवों की ओर से लड़ता हूं।

युधि०—आप मेरी जय की प्रार्थना करें, मैं आप को अपने कर्तव्य से नहीं रोकता

भीष्म—हे राजन्! मैं पूछता हूं आप और क्या चाहते हैं? मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।

युधि०—प्रणाम कर सविनय पूछता हूं कि आपको मैं कैसे पराजित कर सकूंगा। यही बात मेरे हित की है। कृपा करके बतलाइए।

भीष्म—हे राजन्! देवता दानव भी मुझे परास्त नहीं कर सकते।

युधि०—फिर मुझे जय कैसे प्राप्त हो सकती है भला आप विचारिए।

भीष्म—अच्छा! पुनः आना। अभी निश्चिन्त हो युद्ध करो।

युधिष्ठिर लौट कर अपनी सेना में मिल गए और अपने रथ पर सवार हो उन्होंने युद्ध की आज्ञा धृष्टद्युम्न को दी। यह युद्ध १८ दिन तक होता रहा। भीष्म जी १० दिन तक युद्ध करते रहे। प्रथम दिन इन्होंने पाण्डवों की सेना को अपने तीरों से घबरा दिया। यद्यपि अर्जुन और भीम ने इनके रथ को चीर घोड़ों को घायल कर दिया, परन्तु फिर भी इन्होंने खड़े हो कर इस ज़ोर से बाण मारे कि पांडवदल में घबराहट मच गई। पांडवों के श्वेत और शङ्ख महारथी प्रथम दिन भीष्म जी के हाथ से मारे गए। सन्ध्या को जब सेनाएं विश्राम हेतु अपने अपने डेरों में आईं, तो दिन के युद्ध को देख और अपने महारथियों की मृत्यु सुन युधिष्ठिर निराश हो गए। कृष्ण जी ने उनको सान्त्वना दे समझाया कि तुम्हारी ही जीत होगी, परन्तु युधिष्ठिर भीष्म जी के बल और अस्त्रविद्या को स्मरण कर जय को असम्भव समझते थे। तीसरे दिन जब भीष्म जी रण में युद्ध के लिये आए तो अर्जुन ने अपने गांडीव अस्त्र से पितामह जी को व्यथित कर दिया और अपने बाणों से उनके अस्त्रों को छिन्न भिन्न कर डाला। अहा! धर्म का पालन एक ऐसी वस्तु है जो पुरुष को कभी भी, चाहे वह किसी अवस्था में हो, नहीं गिरने देती। पोता दादे से कर्तव्य के पाश में बँधा हुआ युद्ध कर रहा है और यों कह रहा है कि अवसर मिले तो सिर तन से पृथक करदे। अर्जुन के युद्धविशारद होने पर भी उस दिन जय कौरवों की हुई और पांडवों के बहुत से वीर मारे गए। तीसरे दिन पांडवों ने इस वीरता से युद्ध किया कि कौरव घबरा गए और भीम की गदा के आघात से सहस्रों कौरवों के मुंड रुंड इधर उधर भागने लगे। दुर्योधन यह देख कर घबरा गया और भीष्म जी के पास जा कहने लगा कि शोक है, आपके रहते भी कौरवसेना की यह दशा हो! भीम ने कौरव सेना के कई वीरों को मारडाला है और आप कुछ नहीं करते। मालूम होता है कि आप को उनका पक्ष है। यदि आप पांडवों से लड़ना नहीं चाहते, तो स्पष्ट कह दीजिए, व्यर्थ मुझे हैरान क्यों करते हैं! आपकी ऐसी इच्छा थी तो आप मुझे

पहिले कह देते। मैं विचार कर कार्य्य करता। दुर्य्योधन के वचनों को सुन कर भीष्म जी हँसे और उत्तर में बोले कि हे राजन! मैंने तो प्रथम ही कह दिया था कि पांडवों का सामना करना कठिन है। एक वे बली हैं, दूसरे धर्म पर स्थित हैं। परन्तु अच्छा, मैं अपनी शक्ति पर्य्यन्त यत्न करूंगा और तुम्हारे लिये युद्ध करूंगा। यह कह भीष्म जी अपना धनुष सँभाल पांडवसेना के महारथियों को अपने सुवर्णमुख वाले बाणों से पीड़ित करने लगे। पांडवदल बालब्रह्मचारी के बाणों से दुखित हो हाहाकार करने लगा। यह दशा देख कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि तुम आगे बढ़ कर भीष्म जी का सामना करो, नहीं तो आज भी शत्रु विजय पा जांयगे और तुमने प्रण किया है कि मैं भीष्म जी को मारूंगा। अब समय है, उनको मारने का यत्न करो। निदान अर्जुन ने भीष्म जी का बल पूर्वक सामना किया और उनके आग्नेयास्त्र को, जो पांडवदल को जला रहा था, वारुणास्त्र से बिलकुल शान्त कर दिया और शीघ्रता से प्रत्यंचा चढ़ा एक सुवर्ण की फोंक वाले बाण से भीष्म जी का धनुष तोड़ डाला। अर्जुन की वीरता को देख भीष्म ज गद्गद हो गए और प्रसन्नमुख हो बोले कि अर्जुन, धन्य हो! धन्य हो! मैं तुम्हारी वीरता देख कर अति प्रसन्न हुआ। आओ निर्भय होकर मेरे साथ लड़ो। दोनों नरशार्दूल बाणों का मेह बरसा रहे थे और एक दूसरे के बाण को बड़ी शीघ्रता से काटते थे। लड़ते लड़ते अर्जुन तनिक ढीले हो गए, परन्तु भीष्म जी उसी प्रकार युद्ध करते रहे। कुन्ती-पुत्र के ढीलेपन को देख कृष्ण ने दूसरे वीरों को अर्जुन के सहायतार्थ पुकारा। सात्यकि और धृष्टद्युम्न अर्जुन की सहायता को आ गए। बड़ा भारी युद्ध हुआ, रक्त की नदियां बहने लगीं, दोनों ओर के अनेक योधा मारे गए। जब कृष्ण ने देखा कि भीष्म जी तो उसी प्रकार युद्ध कर रहे हैं, परन्तु अर्जुन अभी तक ढीला है, तो उन्होंने दूसरे महारथियों को युद्ध के लिये बुलाया। परन्तु भीष्म जी का सामना करना कठिन हो गया और पांडवसेना घबरा कर भागा चाहती थी कि यह दशा देख कृष्ण आप रथ से उतर युद्ध के लिये उद्यत हो गए और उन्होंने धनुष को टङ्कार दी। कृष्ण के धनुष की टङ्कार सुन और उन्हें अपने सामने युद्धनिमित्त प्रस्तुत देख भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और बोले "आइए! आइए! अहो भाग्य है जो आपके साथ युद्ध करना पड़ा। आप जैसे क्षत्री के हाथ से मरना मेरे लिये गौरव का हेतु है। सामने आइए, जी खोल कर युद्ध कीजिए, आपके साथ युद्ध करना कीर्तिवर्द्धक है"। कृष्ण जी ने भीष्म के वचन सुन क्रोध से उत्तर दिया कि आपही प्रथम वध के योग्य हो, क्योंकि आपने दुर्य्योधन को धोखा देने से न हटाया। दुर्य्योधन को आज उसके कर्मों का फल मिलेगा। शोक है, आपने उस पापी का साथ दिया। भीष्म जी बोले कि हे कृष्ण! मेरा कोई अपराध नहीं, मैंने उस दुष्ट को बहुत समझाया, परन्तु उसने नहीं माना। मैंने अब तक कौरवों का धन खाया है। यदि उनका साथ छोड़ देता तो कृतघ्नता के दोष से दूषित हो जाता। जब कृष्ण जी युद्ध के लिये चले तो अर्जुन ने तत्क्षण उनको पकड़ लिया और बोले मित्र! आप युद्ध न कीजिए, मैं अवश्य पितामह जी को रणभूमि में मारूंगा, अब मैं ढीला नहीं रहूंगा। मैंने विराट नगर में जो वचन कहे थे कि धृतराष्ट्र के पुत्रों और भीष्मपितामह आदि सबको मार युधिष्ठिर को राज्य पर बिठाऊंगा, अवश्य उन वचनों को पूरा करूंगा। आप धनुष रख दीजिए।

श्री कृष्ण जी ने अर्जुन पर विश्वास कर धनुष रख दिया और वे रथ पर बैठ गए। युद्ध आरम्भ हो गया और अर्जुन ने कौरवों की सेना को इस प्रकार उड़ाया कि लाशों के ढेर लग गए, संध्या हो गई। इस दिन भी कौरवों की जय हुई। चौथे दिन के युद्ध में भीम ने कौरवों के बड़े दल को अपनी भयङ्कर गदा से मार डाला और आप हर्ष से नाद करने लगा। कौरव उसका भयङ्कर

रूप देख भागने लगे। दुर्य्योधन ने यह देख भीम को युद्ध के लिये ललकारा। भीम अपने शत्रु को ललकारते देख इस प्रकार उसकी ओर गया जैसे भूखा सिंह अपने आखेट की ओर जाता है। दुर्य्योधन और भीम का भयङ्कर युद्ध हुआ! क्योंकि दोनों गदाधारी थे, इसलिये बड़ा लोमहर्षण युद्ध होने लगा। दुर्य्योधन के भाई भी उसकी मदद को आए। भीम तनिक भी बिचलित नहीं हुआ, वरन् दुर्य्योधन के देखते देखते उसने उसके कई भाइयों का शिरच्छेदन कर दिया। दुर्य्योधन के भाइयों की यह दशा देख महारथी शल्य दुर्य्योधन की रक्षा के लिये दौड़े और भीम की आंख बचा उसने ऐसा बाण मारा कि भीम मूर्छित हो गया; परन्तु शीघ्र उठ फिर सिंहनाद करने लगा। भीम के नाद को सात्यकि ने सुना और तत्काल उसने भीम के पास अपना रथ पहुंचाया और कौरवसेना को वह अच्छे प्रकार मथन करने लगा। भीम ने सात्यकि की सहायता पा धृतराष्ट्र के ५ पुत्रों को मार डाला और दुर्य्योधन और शल्य को अनेक बाण मारे। जब भीष्म जी ने दुर्य्योधन के दल की यह दशा सुनी तो दूसरे कौरव सेनानायकों को दुर्य्योधन के सहायतार्थ भेजा और थोड़े समय बाद आप भी आ गए। दुर्य्योधन ने भीष्म जी से पांडवों के विजय और इस प्रकार लड़ने का कारण पूछा। भीष्म ने कहा जिनका पक्ष दृढ़ हुआ करता है और जो धर्म पर स्थित होते हैं, वे सर्वदा जान तोड़ कर लड़ा करते हैं। युधिष्ठिर के पक्षवाले जानते हैं कि हम धर्म के लिये युद्ध कर रहे हैं और ईश्वर के आज्ञानुसार दुष्ट को दण्ड देने का यत्न कर रहे हैं। इस लिये वे तनमन से युद्ध करते हैं। और फिर कृष्ण आप धर्म का उपदेष्टा उनके मध्य में स्थित है, कहो क्यों न वे इस प्रकार युद्ध करें! भीष्म जी इस दिन जिस ओर युद्ध का बल देखते उधरही घोड़ा दौड़ा पहुंचते। यद्यपि इन्होंने अपनी ओर से प्रबन्ध पूरा रक्खा, परन्तु उस दिन कौरवों की बड़ी हानि हुई और बहुत से दुर्य्योधन के भाई मारे गए। दुर्य्योधन ने बहुत शोक किया और वह भीष्म जी के पास जा रोने लगा और बोला कि मुझे किस प्रकार जयलाभ होगा! भीष्म जी ने कहा कि राजन्! मैंने तुमको पहिले ही युद्ध का परिणाम बतला दिया था, अब भी मान जाओ, पांडवों से संधि करलो, उनको उनका भाग दे दो, नहीं तो तेरे पिता का वंश और देश का बिलकुल नाश हो जायगा। मैंने कई बेर तुमको समझाया, परन्तु तुमने नहीं माना। तुमने जिस प्रकार पांडुपुत्रों का निरादर किया है, वे भला तेरे भाइयों को जीता छोड़ेंगे? अपने कर्मों का फल भुगत रहे हो। अबभी समय है, मेरा कहा मानो। स्मरण रखो सत्य उनकी ओर है।

सत्यम् बलम् महाबलम्!

सत्य का बड़ा बल है, उनको पराजित करना कठिन है। दुर्य्योधन चुप होकर वहां से उठ गया। पांचवें, छठे और सातवें दिन बड़े जोर की लड़ाई हुई। भीष्म जी ने अपने खड्ग से कई राजकुमारों के शिर उड़ाए और पांडवदल को इस प्रकार भस्मीभूत किया जिस प्रकार आग्नेय पर्वत अपने यौवन के दिनों में किया करता है। परन्तु उनके प्रवाह को अर्जुन और सात्यकि ने रोका और धृष्टद्युम्न ने अर्जुन के सम्मुख खड़े हो शेष कौरवसेना का संहार करना आरम्भ किया। युद्ध करते करते संध्या हो गई।

आठवें दिन पांडव सेना ने एक विचित्र व्यूह रचा और भीम को मुखिया बनाया। भीम ने सब सेना को दुरुस्त किया और वह आप अपने भयङ्कर गदा को घुमाने लगा। कौरवों के बीच में कौन ऐसा वीर था जो इसके सामने आता! कौरव सेना थर्रा उठी। जब भीष्म जी सामने आए तो भीम ने अपनी गदा से उनके रथवान को मार डाला, घोड़े बिना सारथी के रथ को उड़ा कर ले चले और रणभूमि से बाहर ले गए।

अब कौरव सेना के होश गुम हो गए, और भीम निर्भय हो इस प्रकार विचरने लगे जैसे अंधेरी रात पा निशाचर डोला करते हैं। भीम ने धृतराष्ट्र के ९ पुत्र मारडाले और दुर्योधन को मूर्छित कर दिया। दुर्योधन जब होश में आया तो भीष्म जी के पास पहुंचा और उनको युद्ध का वृत्तान्त सुना कर बोला कि आप रण से बाहर आगए, भीम कौरवों की सेना का संहार कर रहा है, कुछ बन नहीं पडता। भीष्म जी ने कहा हमने पहिले ही तुमको समझा दिया था, भला तुम किसीकी सुनते हो? अब क्यों हैरान होते हो? चलो क्षत्रियों की भांति युद्ध करो, मेरे पीछे क्यों भाग आए युद्ध करना क्षत्री का धर्म है। मैं युद्ध से मुख नहीं फेरता। चलो मैं आता हूं। यह सुन दुर्योधन आकर युद्ध करने लगा और भीष्म जी ने भी आकर पांडवसेना से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। थोड़ी ही देर में सन्ध्या हो गई, इसलिये सेनाएं विश्राम करने चली गईं। अपनी सेना का नाश और भाइयों की मृत्यु देख दुर्योधन ने कर्ण से सम्मति मांगी कि क्या करूं। कर्ण भीष्म जी का शत्रु था, इसलिये उसने यही सलाह दी कि तुम भीष्मपितामह जी के पास जाओ और उनसे कहो कि वे युद्ध से मुंह मोड़ मुझ को युद्ध की आज्ञा दें, क्योंकि भीष्म पांडवों की जय चाहते हैं इसलिये अच्छी प्रकार लड़ते नहीं, उनको नायक की पदवी से हटा मुझे वह पद दो, देखो फिर कैसा युद्ध होता है। एक ही दिन में पांडवसेना को भगा तुम्हें राज्यसिंहासन पर बिठा दूंगा। भीष्म कुछ तो पांडवों पर दया करते हैं और कुछ उनमें इतनी शक्ति भी नहीं कि पांडवों को पराजित कर सकें; इसलिये भीष्म से तुम विनय करो कि वे शस्त्र रख दें। जब भीष्म अलग हो जायंगे तो मैं पांडवों को पराजित कर दूंगा। दुर्योधन कर्ण की सम्मति के अनुसार भीष्म जी के तम्बू में गया। भीष्म जी ने उसको सुवर्ण की कुर्सी पर बिठाया और आने का कारण पूंछा। दुर्योधन ने हाथ जोड़ आंखों में आंसू भर निवेदन किया कि हे पितामह! मैंने केवल आप पर विश्वास करके इस युद्ध को आरम्भ किया था; आपने कहा था कि शक्ति अनुसार युद्ध कर पांडवों को परास्त करने का यत्न करूंगा। पांडव मेरी सेना को नष्टभ्रष्ट कर रहे हैं; यदि आप पांडवों पर कृपादृष्टि रखते हैं तो कृपा कर कर्ण को युद्ध की आज्ञा दीजिए और आप आराम से रहिए। यह कह दुर्योधन चुप हो गया। भीष्म जी ने सांस भरा और किसी प्रकार का क्रोध या शोक प्रकट किए बिना, वे थोड़ी देर ठहर, दुर्योधन से बोले "हे दुर्योधन! तुम मुझे अपने इन शब्दों से घायल क्यों करते हो। जो कुछ मेरी शक्ति में है मैं करता हूं। अपनी शक्ति अनुसार तेरे शत्रुओं से लड़ता हूं तुम्हारे हित के लिये मैं अपने जीवन को बेच देना चाहता हूं। परन्तु तुम अपने भाई पांडवों के बल से भली प्रकार अभिज्ञ हो, तुम आप उनके हाथ देख चुके हो। वे मुझ पर कैसे कैसे बाण मारते हैं, यह भी देख चुके हो। मैं अपनी ओर से कसर नहीं करता हूं। परन्तु पांडवदल का सामना करना टेढ़ी खीर है। तुम ज्ञानशून्य हो, यह भी नहीं समझते कि मैं क्या करता हूं। जैसा किसी ने बहकाया वैसा बकने लग गए। अब इतना महानयुद्ध आरम्भ करके कायर क्यों बनते हो। वीरों की तरह रण में लड़ो, जहां तक मुझ में बल है मैं लडूंगा और अपने कर्तव्य को पालन करूंगा, मैंने तेरा नमक खाया है, उसका प्रत्युपकार अवश्य दूंगा। तुम अब जा कर सो रहो प्रातःकाल तुम देखोगे कि मैं किस प्रकार लड़ता हूं। ऐसा युद्ध करूंगा कि सदा लोग उसे स्मरण रक्खेंगे और साक्षी देंगे कि किस प्रकार भीष्म ने धर्म पालन किया है"।

[क्रमशः]

एक विद्यार्थी

सेवावृत्ति की विगर्हणा

[१]

चाहै कुटी अति घने बन में बनावै;
चाहै बिना नमक कुत्सित अन्न खावै।

चाहे कभी नर नए पट भी न पावै ;
सेवा प्रभो ! पर न तू पर की करावै ॥
सेवा-समान अति-दुस्तर-दुःखदायी,
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई ।
जीना कभी न उसका जग में भला है,
जो पेट-हेत पर-सेवन को चला है ॥
स्वातंत्र्य-तुल्य अतिही अनमूल्य रत्न,
देखा न और बहु वार किया प्रयत्न ।
स्वातंत्र्य में नरक-बीच विशेषता है;
न स्वर्ग भी सुखद जो परतन्त्रता है ॥
जो आत्मभाव अपना गिरि से गिरावै;
मानापमान कुछ भी मन में न लावै ।
जो शीश नीच-नर-सम्मुख भी झुकावै;
सेवा वही कर, किसी विध, पार पावै ॥
निद्रा, क्षुधादिक न जो जन जानते हैं;
न प्रात, रात, दिन जो पहचानते हैं
जो मौन, दुर्वचन भी सुन, ठानते हैं;
स्वातन्त्र्य खो कर वही सुख मानते हैं ॥
कोई कठोर यदि बात उसे कहे है,
कुत्ता कभी न फिर पास खड़ा रहे है ।
दुर्वाक्य बाण सह जो न करें विचार,
धिक्कार क्यों न उनको दश लाख वार ॥
जो श्वान के सदृश सेवक मानते हैं,
वे तुल्यता न करना नर जानते हैं ।
कुत्ता कहां सकल काल यथेच्छचारी,
विक्रीत-जीवन कहां जन दास्यकारी !
पूजा यथा-समय न प्रभु-नाम-जाप;
होता शरीर-सुख से न कभी मिलाप ।
न स्वार्थही न परमार्थ-विचार-बात;
सेवा किए सब सुखों पर वज्रपात ॥
सौम्य-स्वरूप शिव ने सिर पै बिठाया
सर्व प्रकार अति आदर भी दिखाया ।
तौ भी महा-कृश कलाधर की कला है;
हा हा ! पराश्रय नहीं किसको खला है ?
आलस्य-लीन, शुचि-सज्जनता-विहीन;
अन्तर्मलीन, पर-पीड़न में प्रवीण ।
रे दैव ! दण्ड मन जो कुछ और आवै,
ऐसे प्रभु-प्रवर से पर तू बचावै ॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी

वस्तु-परिज्ञान ।

धूल और बालू

गङ्गा के किनारे पर एक छोटा सा नगर है। इसमें बृजकिशोर नाम का एक लड़का रहता है। यह लाहौर में डाकृरी पढ़ता है, इसलिये ज्यादः वहीं रहता है। आज कल छुट्टी होने से घर आया है। घर में इसके दो और छोटे छोटे भाई और एक बहुत छोटी बहिन है। ये तीनों आपस में दिन रात खेला करते हैं। आज ये सब धूल और बालू और बहुत से मिट्टी के छोटे बड़े टुकड़े इकट्ठे करके खेल रहे हैं। बृजकिशोर ने यह देख बिचारा कि इनको कुछ सिखलाना चाहिए, सिर्फ़ खेलने से इनका कुछ उपकार नहीं होगा। इसलिये वह उनके बीच जाकर बैठ गया और बोला "यह तुम सब क्या कर रहे हो ?"

लड़के डरे और चुप हो रहे। क्योंकि वे सब धूल में खेल रहे थे। बृजकिशोर उन्हें डरते देख कर हँसे और मीठे बैन से फिर पूछा, "बोलो, तुम लोग यहां क्या करते हो" ?

उन सभों ने कहा खेल खेल रहे हैं।

बृज०—"तो यह क्या है ?"

उनमें से सबसे बड़े लड़के ने जिसका नाम केशव था कहा, "यह धूल है"।

तब वे अपनी बहिन की तरफ देख कर बोले, "रानी यह क्या है" उसने कहा "बालू"।

बृज०—"वाह, अभी तो केशव ने कहा कि यह धूल है"।

लड़की—"हां, उनका धूल है, पर हमारा तो बालू है"

बृज०—"यह क्यों ! दोनों एक से तो हैं, दोनों ढेर मिट्टी के तो हैं !"

लड़की—"नहीं, देखिए मेरा सफेद है और उनका मैला है और यह हमलोग गङ्गा जी से लाए हैं"।

वृज०—"हां, इसलिये तुम इसको बालू कहती हो। तो और कोई तुमसे बालू और धूल में फरक पूछे तो तुम उसको बतला देगी ?

लड़की—हां, मैं उससे कहूंगी कि बालू सफेद होती है और नदी के किनारे पर मिलती है, पर धूल मैली होती है और खेतों में, सड़कों पर और नदी से दूर मिलती है।

वृज०—"भला और कोई फरक इनमें है ? देखें, कौन बतलाता है" ?

वे सब एक दृष्टि से उन दोनों मिट्टी और बालू के ढेरों की ओर देखने लगे।

इतने में वृजकिशोर ने थोड़ीसी बालू ले कर अपने हाथ पर रख कर फैला दी और कहा "देखो यह सब क्या है। छोटे छोटे बालू के हिस्से। तुम लोग जानते हो इनको हम लोग क्या कहते हैं ?"

उन लोगों ने कहा "नहीं"।

वृज०—ये 'कण' कहे जाते हैं।

फिर उन्होंने केशव के हाथ पर उसी तरह से थोड़ी सी धूल फैलाई और कहा "देखो इसके कण कैसे हैं"। उन सभों ने उसे अच्छी तरह से देखा और कहा कि बालू के कण बहुत बड़े बड़े हैं। ये तो दिखाई पड़ते हैं। धूल के कण भी हैं पर ये बहुत छोटे हैं, अच्छी तरह से दिखाई नहीं पड़ते"।

इतने में वे मिट्टी के टुकड़ों को देख कर बोले—"देखो तुम लोगों ने इन सभों को भी बालू की तरह धूल से अलग रक्खा है। इससे जान पड़ता है कि तुम इनमें और धूल में भी बहुत फरक मानते हो।

गिरधर उनका छोटा भाई जो केशव से छोटा था, बोला। "क्या आप इनमें कुछ फरक नहीं मानते ?"

वृज०—हां, देखने में तो फरक ज़रूर है, पर असल में ये एक ही हैं"।

लड़के आपस में एक दूसरे की तरफ देखने लगे, जिससे वृजकिशोर को मालूम हुआ कि वे उनकी बातों को नहीं समझे, उन्होंने तुरन्त एक छोटा सा मिट्टी का टुकड़ा उठा लिया और दोनों हाथों के बीच दबाकर अच्छी तरह उसे तोड़ और पीस डाला। फिर लड़कों के सामने दिखला कर पूछा "यह क्या है"?

उन सभों ने कहा "यह तो धूल है"।

वृज०—"यह धूल कहां से आई" ?

वे बोले "उसी मिट्टी के टुकड़े में से जो आप के हाथ में था"। तब वृजकिशोर ने कहा कि 'देखो, इस मिट्टी के टुकड़े और धूल में कुछ बहुत फरक नहीं है। दोनों एक ही तरह के कणों के ढेर हैं। फरक सिर्फ यही है कि ढेलों में ये कण आपस में एक दूसरे से मिले हैं, जल्दी छूट नहीं सकते। इनके छोड़ाने के लिये बड़ा जोर करना पड़ता है। तुमने देखा था, अभी हमने कितना जोर किया था, पर धूल में यही कण आपस में एक दूसरे से जुटे नहीं रहते। वे बहुत जल्दी हट जाते हैं और ज़मीन में धूल जो तुम देखते हो, इन्हीं टुकड़ों के टूट जाने से या कणों के अलग हो जाने से बनती है"!

केशव ने कहा "लेकिन यह बालू कैसे बनती है ? इसके तो बहुत बड़े बड़े टुकड़े या ढोके हम लोग नहीं देखते कि जिनके टूट जाने या पिस जाने से यह बनती है। बतलाइए तो यह बालू के कण कहां से आए ?"

वृजकिशोर उन लोगों को बालू क्या है, यह कैसे बना, यह अन्त में क्या बन जायगा यह सब खेल ही में बताया चाहते थे, कि इतने में घर से एक नौकर आया और बोला कि "घर में आप की बोलाहट है। जल्दी चलिए"।

वृज०—क्यों ?

नौकर—दो लड़के आप के लिये देर से बैठे हैं। वृजकिशोर ने अपने भाइयों से कहा "मैं तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हूं। आज सांझ हो गई, घर चलो कल सवेरे बालू कैसे बनता है, यह तुम्हें बतावेंगे। ठीक सात बजे हम से मिलना"। र. द. प. [क्रमशः।

साहित्य समाचार ।

"खड़ी बोली का पद्य"

१—मुन्शी स्टाइल ।

२—मौलवी स्टाइल ।

५—युरोपियन स्टाइल ।

४—युरेशियन स्टाइल ।



३—पण्डित स्टाइल ।

दो पैरों पर एक धड़, फिर सिर पाँच अनूप ।
मुझ पचरंगे पद्य का देखो सुघर स्वरूप ॥

[पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी कृत ।



रैफेलकृत सिष्टिन म्याडोना ।

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ३] अक्तूबर १९०२ ई० [संख्या १०

विविध वार्त्ता

आज कल का विज्ञान धीरे धीरे इस बात को सिद्ध करता जाता है कि बनस्पति में भी जान है, उनका जीवन भी ठीक अन्य जीवधारियों के समान है। अब एक नई बात सिद्ध हुई है। वह यह है कि बनस्पति भी मनोहर गान को पसन्द करते हैं। ऐसे स्थानों में जहां गान हुआ करता है और सूरज की धूप आती है, पौधे बहुत शीघ्र फल पुष्पान्वित हो जाते हैं। बोस्टन के एक डाकृर साहब लिखते हैं कि मैंने स्वयं इस बात की परीक्षा की है। वे कहते हैं कि मैंने एक लज्जावती का पेड़ अपने कमरे के पास लगा रक्खा था। जब कभी मैं बाजा बजाता वा कोई गीत गाता तो उस पेड़ की पत्तियां आप से आप खिल जातीं और उसकी टहनियां मेरी ओर झुक आतीं। यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने इस बात की परीक्षा करनी चाही। एक दिन मैं योंही गा और बजा रहा था और उस पेड़ के अद्भुत आल्हाद को देख रहा था, कि इतने में मैंने राग और ताल में जान बूझ कर गड़बड़ डाल दिया, जिसमें उस पेड़ की टहनियां एक दम सकुच गईं और पत्तियों ने मुंह बंद कर लिया। फिर मैंने उसी क्षण सुरीला गाना और बजाना प्रारम्भ किया और उस पेड़ की टहनियां आप से आप फैल गईं और पत्तियां खिल उठीं। साहब बहादुर इससे सिद्ध करते हैं कि जिस प्रकार मनोहर वाद्य और गान से मनुष्य का चित्त प्रफुल्लित हो एक अनिर्वचनीय आनन्द में निमग्न हो जाता है, उसी प्रकार पेड़ों की भी अवस्था है। ईश्वर की सृष्टि में बहुत सी ऐसी अद्भुत बातें हैं जिन्हें हम नहीं जानते। ईश्वर! तेरी माया का पार नहीं!

***

अब तक यह सुनने में आता था कि मोती प्रायः समुद्रतल के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलते।

पर गत सितम्बर मास में एक झील में मोती और उसके सीप बहुत से पाए गए हैं, जिससे यह विचार होने लगा है कि झीलों में ये कैसे उत्पन्न हो सकते हैं।

पंजाब में फ़िरोज़पुर ज़िला है जिसकी एक छोटी सी तहसील का नाम फ़ाज़लका है। इस तहसील में एक झील है जिसे लोग "बन्ध" झील कहते हैं और जो तीन मील लम्बी और २, ३ सौ गज़ चौड़ी है। जब सतलज नदी बढ़ती है तो उसका पानी उसमें आता है, अथवा बरसाती पानी से यह झील भरी रहती है। गर्मी के दिनों में कभी कभी ऐसा भी होता है कि बहुत स्थानों में पानी सूख कर ज़मीन निकल आती है। परन्तु जाड़े के दिनों में यहां की शोभा अद्भुत हो जाती है। पानी के भरे रहने से सैकड़ों भांति के पक्षी इसके किनारों पर अपना डेरा आ जमाते हैं और अपने कलोल से दर्शकों के आनन्द को बढ़ाते हैं। म्युनिसिपैलिटी की ओर से इस झील में डोंगियां भी रहती हैं, जिनपर चढ़ कर दो चार आने देने से लोग इधर उधर घूम कर अपने सन्तप्त हृदय को प्रकृति के सुहावने दृश्यों और शीतल वायु से ठंढा करते हैं। सितम्बर मास में इसी झील के किनारे पर कई एक लड़कों ने एक सीप पाई, जिसे उन्होंने तोड़ा तो उसमें से एक चमकता हुआ मोती निकला, जिसे उन्होंने समझा कि किसी जानवर का सिर है। इसी भांति पर लड़कों ने बहुत से सीप तोड़ डाले और उनमें से मोती निकाल कर दो दो चार आने पर बेंच डाला। अब सर्कार को इसका पता लग गया है, वहां पर पहरा बैठ गया है और मोतियों की जांच हो रही है। जहां तक हमें ज्ञात है, पृथ्वीतल पर भारतवर्ष पहिला देश, पजांब पहिला सूबा, फ़ीरोज़पुर पहिला ज़िला, फ़ाजलका पहिली तहसील, और बन्ध पहिली झील है जिसमें मोतियों के सीप निकले हैं। जो कुछ हो, ईश्वर की सृष्टि में कोई बात असम्भव नहीं है। देखा चाहिए सरकारी जांच का क्या परिणाम होता है और कितने मूल्य के मोती यहां से निकलते हैं। रत्नगर्भा भारत वसुन्धरा में सब कुछ है, केवल कराल काल ने इसे व्यथित कर रक्खा है और दुर्दैव ने भारत में कुपूतों को उत्पन्न कर इस भारतमाता के यश और प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला रक्खा है।

***

हमें निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं जिनके विषय में हम अपनी सम्मति कई कारणों से अब तक नहीं लिख सके। इस संख्या में हम संक्षेपरूप से अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं। जिन पुस्तकों की समालोचना इस बेर नहीं हो सकी, उसको दूसरी संख्या में छापने का उद्योग किया जायगा।

सावित्रीचरित्र—ग्रन्थकर्ता सत्यानन्द अग्निहोत्री। हिन्दू सन्तान में से कदाचित् ही कोई होगा जो सावित्री और सत्यवान के नाम से परिचित न हो। स्त्री अपने सतीत्वबल से क्या नहीं कर सकती, यह इस कथा से भली भांति विदित हो जाता है। हिन्दू स्त्री मात्र के लिये सावित्री का चरित्र, उसका स्वभाव, उसकी धर्म्मनिष्ठा, उसका पतिप्रेम, उसकी पतिसेवा आदि सब उत्तम उत्तम गुण, आदर्श होने चाहिए। यह पुस्तक प्रत्येक घर में रहनी चाहिए जिसमें स्त्रियां पढ़ कर लाभ उठा सकें। ग्रन्थकर्ता महाशय से हमारी प्रार्थना है कि जब वे इस पुस्तक का दूसरा संस्करण करें तो इसकी भाषा को और भी सरल कर दें, जिसमें स्त्रियां उसे सुगमता से पढ़ और समझ सकें।

नीतिसार—ग्रन्थकर्ता सत्यानन्द अग्निहोत्री। यह छोटी सी पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। पहिले अध्याय में दृष्टान्तशतक से, दूसरे में नीतिशतक से, तीसरे में सुवचनशतक से, चौथे में चाणक्यनीति से, पांचवें में शुक्रनीति से, छठवें में उपदेशशतक से और सातवें में रत्नशतक से श्लोकों का संग्रह करके नीचे भाषा में उनका अर्थ दिया है। सब मिलाकर १२९ श्लोक हैं। संग्रह अच्छा है।

विक्टोरिया भूषण—ग्रन्थकर्ता राजा फतहसिंह वर्म्मा। भूमिका के पढ़ने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ता महाशय ने हिन्दी भाषा में महाराणी विक्टोरिया का जीवनचरित्र न देखकर इस ग्रन्थ की रचना की है। परन्तु राजा साहब को जानना चाहिए कि हिन्दी में अब तक महाराणी विक्टोरिया के कई जीवनचरित्र छप चुके हैं, जिनमें सबसे अच्छा और बड़ा पण्डित लज्जाराम मेहता का लिखा हुआ, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, में छपा है। यह भूषण ५६ पृष्ठों का ग्रन्थ है जिनमें से २५ पृष्ठों में तो केवल इङ्गलैंड के भिन्न भिन्न स्थानों और वस्तुओं का वर्णन है। शेष ३१ पृष्ठों में से २७ पृष्ठों में महाराणी का और ४ पृष्ठों में महाराज एडवर्ड का चरित्र वर्णित है। समस्त ग्रन्थ पढ़ जाने पर भी हमें इसमें केवल छपाई को छोड़कर और कोई बात प्रशंसायोग्य न मिली। हां—कुछ नई बातों का हमें पता लगा, जिनके विषय में हमें पहिले ज्ञान न था। हम जानते थे कि इङ्गलैंड के लिये अन्न भारतवर्ष से जाता है और बिना जोते बोए पृथ्वी से अन्न उत्पन्न नहीं होता, पर इस ग्रन्थ के पढ़ने से हमें ज्ञात हुआ कि इङ्गलैंड ऐसा देश है—"सब खाद्य पदार्थ जहां पर होते, वर बीज जमैं पृथ्वी बिन जोते"। राजा साहब को उचित था कि जब इङ्गलैंड का वृत्तान्त स्वयं कुछ नहीं जानते थे, तो और लोगों से पूछ वा ग्रन्थों में स्वयं पढ़लेते। किसी ऐसे नगर या देश के वर्णन में जो पृथ्वीतल पर वर्तमान हो, मनमानी रचना कर बैठना सर्वथा अनुचित है। यह तो सुनने में आया था कि, सर्कसवाले योरप में हाथी ले गए हैं। पर हमें यह नहीं ज्ञात था कि वहां "ठाढ़े झूमति (?) हैं मतङ्ग प्रमदा, करे सुग्रवाज नैर"। आदि स अन्त तक पढ़ जाने पर भी हमको इस ग्रन्थ का कोई प्रयोजन न ज्ञात हुआ। इस ग्रन्थ से भाषाभण्डार के किसी अभाव की पूर्ति भी नहीं हुई। फिर राजा साहब ने क्यों कष्ट उठाकर इतनी लम्बी चौड़ी रचना की और छपाई में अपना रुपया नष्ट किया।

खत्री एजूकेशन कमेटी बनारस की पहिली वार्षिक रिपोर्ट—सन् १९०१ के जून और जुलाई मास में बरेली में खत्रियों की एक विशेष महती सभा जातिसम्बन्धी बातों पर विचार करने के लिये हुई थी। अनेक महाशयों के उद्योग से इस सभा ने यह निश्चय किया था कि एक कमेटी बनाई जाय जो खत्री बालक और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करे और उन्हें शिक्षा पाने में सहायता देवे। ३० महाशय इस सभा के सभासद चुने गए थे। पहिले वर्ष में कमेटी ने अपने नियम बना कर सभा की रजिस्टरी करा ली और नियमानुसार बालकों की सहायता प्रारम्भ कर दी। सब मिलाकर कमेटी ने १२६ विद्यार्थियों की सहायता में ५२४।।=) व्यय किए, तथा अन्य प्रकार से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उद्योग किया। सभा का आय इस वर्ष में १०५१।।)।।। हुआ जिसमें से ७०३।।-) कमेटी ने व्यय किया। वर्ष के अंत में ३४८।।-)।।। सभा का बचत रहा। महाराजाधिराज बर्दवान १००) मासिक से इसकी सहायता करते हैं। रिपोर्ट में लिखा है कि, इस कमेटी का काम विशेष कर महाराजाधिराज बर्दवान की सहायता से चलता है। पहिले वर्ष में कमेटी को ८००) रु० बर्दवान से मिला और १२५) रु० अन्य सभासदों से। सभासदों ने ११५) रु० सभा के आर्थिक कार्यों के लिये दिया और एक अन्य महाशय ने अपने पुत्र के यज्ञोपवीतोत्सव पर १०।।-) कमेटी को दिया और ।।।=)।।। सेविंग बंक से सूद का मिला। सभा के वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि २६ अगस्त तक २९०) रु० इसे के सभासदों से और प्राप्त हुआ। इसमें से २५०) का दान प्रयाग के राय रामचरणदास बहादुर ने किया। हमें इस कमेटी के उद्योग और कार्य से विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ और हमें आशा है कि भविष्यत् में यह कमेटी अपना काम निरन्तर

सफलता के साथ करती जायगी, खत्री लोग इसकी सहायता में किसी प्रकार की त्रुटि न करेंगे। आगामी वर्ष में कमेटी ने १४००) बालकों की सहायता में व्यय करना निश्चय किया है। हमारा विश्वास है कि कमेटी के कार्यकर्तागण इसमें से कुछ रुपया बालिकाओं की शिक्षा में भी व्यय करेंगे। काशी के कुछ लोगों की प्रार्थना पर और शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर के अनुरोध से, बनारस की म्युनिसिपैलिटी ने २५) रु० मासिक उच्चश्रेणी की बालिकाओं की शिक्षा के लिये व्यय करना निश्चय किया है और स्कूल का समस्त प्रबन्ध नगरस्थ लोगों की एक कमेटी को सौंपा है। अभी हमको यह ज्ञात नहीं हुआ है कि इस कमेटी ने किस प्रकार स्कूल का चलाना निश्चय किया है। जो कुछ हो, पर हमें विश्वास है कि वे लोग बालिकाओं को ऐसी शिक्षा देंगे जिसमें वे अपने धर्म का पालन कर गृहस्थी के कार्यों में निपुण हों। खत्रीसभा को उचित है कि इस कमेटी की आर्थिक सहायता करके देखें कि बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार उचित होगा। आशा है कि हमारी प्रार्थना पर उस सभा के लोग ध्यान दें।*

समालोचक मासिकपत्र—सम्पादक बाबू गोपालराम और प्रकाशक मिस्टर जैन वैद्य। समालोचनाओं की चर्चा अनेक महीनों से हिन्दीपत्रों और लेखकों में चल रही थी, परन्तु अभीतक इन सब विचारों का परिणाम कुछ नहीं हुआ था। अब (जयपुरनिवासी) मिस्टर जैनवैद्य ने अपने व्यय से यह पत्र निकालना आरम्भ किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दी में इस समय उचित समालोचनाओं की आवश्यकता है, परन्तु हमें आशंका है कि यह पत्र उस अभाव को पूरा न कर सकेगा। इस प्रथम ही अंक को देख कर हम इस रूप और प्रबन्ध में इस पत्र के अधिक चलने के आकांक्षी नहीं हैं। इस अंक में एक "समालोचना" शीर्षक लेख निकला है जो निस्सन्देह किसी अन्य भाषा के लेख का अनुवाद है, क्योंकि पहिले उसकी लिखावट कहेदेती है कि हो न हो यह बंगला के किसी लेख का अनुवाद है, और दूसरे इसमें जिन जिन कवियों के नामों का उल्लेख किया गया है, उनके काव्यों को समझना तो दूर रहा, उनके ग्रन्थों के भी दर्शन बाबू गोपालराम जी ने न किए होंगे। जहां तक हमें ज्ञात है बाबू गोपालराम जी दो चार शब्द लिख लेने या अपने हस्ताक्षर कर लेने के अतिरिक्त उतनी ही अंगरेज़ी जानते हैं जितनी अफ्रिका के आदिम निवासी जानते होंगे। फिर उन्होंने ऐसे लेख को लिखने और अपनी धृष्टता दिखाने का साहस क्यों किया। इसके आगे चलकर सम्पादक महाशय ने नागरीप्रचारिणी सभा पर अपने हाथ साफ किए हैं। भाषासारसंग्रह के प्रथम भाग के प्रबन्धों की आपने समालोचना की है। प्रबन्ध और विषय अच्छा होने पर भी वह निन्दनीय है, क्योंकि दूसरी पुस्तकों में उस विषय पर लेख लिखे जा चुके हैं। धन्य बुद्धि और धन्य समालोचकशक्ति! सम्पादक महाशय! जिस शेक्सपीयर के एक अक्षर के समझने की भी आपमें शक्ति नहीं है, उसके नाटक के आशय पर जो लेख या कहानी लिखी गई है, उसमें किस अंग्रेज़ी शब्द के स्थान पर भाषा का कौन सा शब्द क्यों रक्खा गया है, इसके निर्णयकर्ता आप नहीं हो सकते। नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यकर्ताओं को उचित है कि आगे जब भाषासारसंग्रह का दूसरा संस्करण हो तो हिन्दी के एकमात्र प्रभावशाली लेखक बाबू गोपालराम जी के जासूस से दो एक कहानियां उसमें सम्मिलित कर दें, जिसमें बालकों को लौकिक और पारलौकिक दोनो लाभ हों, और यदि यह आप लोगों के रुचिकर न हो तो माधवीकंकण के अनुवाद के कुछ भाग को अवश्य उसमें उद्धृत करलें, क्योंकि उसके पढ़ने से बालकों को एक लाभ अवश्य होगा कि वे

* यह नोट लिखने के पीछे हमें ज्ञात हुआ कि कमेटी ने १०) रु० मासिक इस स्कूल की सहायता के लिये देना स्वीकार किया है।

हिन्दी के साथ साथ क्रिया बदल कर बंगला भाषा भी सीख जायगे। हम समस्त पत्र की आलोचना करके व्यर्थ अपना समय नष्ट नहीं किया चाहते। हमको इस पत्र के पढ़ने से बड़ा दुःख हुआ है। यदि यह पत्र न प्रकाशित होता तो अच्छा था। अन्त में हमारा प्रश्न पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्रीधर-पाठक और पण्डित गंगाप्राद अग्निहोत्री आदि महाशयों से यह है कि यदि आपलोग समालोचक-समिति के सभासद हुए हैं तो क्या यह पत्र और इसके लेख आपलोगों की सम्मति से छापे गए हैं? यदि ऐसा नहीं हुआ है तो फिर आप लोगों के सभासद होने की क्या आवश्यकता है? अस्तु, हम अपने मित्र मिस्टर जैनवैद्य से प्रार्थना करते हैं कि वे इस उद्योग से हाथ उठावें और अपने रुपए को किसी दूसरे अच्छे काम में लगावें। समालोचक ने उचित समालोचना करने का बीड़ा उठाया है, इसीसे हमें कुछ स्पष्ट स्पष्ट लिखने का साहस हुआ। सम्पादक और प्रकाशक महाशय हमें क्षमाकर हमारी शङ्काओं के समाधान करने का उद्योग करेंगे।

वस्तु-परिज्ञान

[२]

बालू

दूसरे दिन लड़के सूर्य निकलने के पहिले ही उठ, हाथ मुंह धो, सफेद कपड़े पहिन बृजकिशोर के पास गए और देखा कि उनके पास छोटे छोटे बरतनों में मिट्टी, बालू, पानी आदि रक्खे हुए हैं।

उनके जाते ही बृजकिशोर ने उनको कई छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े दिए और पूछा कि ये कैसे बने और किस चीज से बने?

लड़के चुप रहे।

तब उन्होंने एक छोटा सा टुकड़ा लेकर एक शिला पर एक बड़े टुकड़े से तोड़ कर चूर चूर कर के पीस डाला और कहा कि देखो इन्हीं कणों का यह पत्थर बना था, जैसे धूल के कणों का वह मिट्टी का ढेला बना था। पत्थर के टुकड़े और मिट्टी के ढेलों में पहिला फरक यह है कि एक के कण हाथ से भी अलग अलग हो जा सकते हैं, पर दूसरे के नहीं।

फिर वे उन्हीं पत्थर के कणों को दिखला कर कहने लगे कि "देखो, इन्हींको हम लोग बालू कहते हैं।"

केशव ने कहा "पर यह नदी के किनारे लाखों मन कहां से आया?"



बृजकिशोर ने कहा "तुम जानते हो ये नदियां कहां से आई हैं?"